प्राकृत भारती पुष्प-२४

वाक्पतिराज की लोकानुभूति

सम्पादक :

डा० कमलचन्द सोगाणी

सह-प्रोफेसर, दर्शन-विभाग

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय

उदयपुर

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान

जयपुर

प्रकाशकीय

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान के 24 वें पुष्प के रूप में 'वाक्पतिराज की लोकानुभूति' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्राकृत भारती सस्थान प्राकृत भाषा के विकास के लिए समर्पित है। इसमें कोई सन्देह नही है कि प्राकृत भाषा का ज्ञान भारतीय संस्कृति के उचित मूल्यांकन के लिए महत्वपूर्ण है। इसका अध्ययन-अध्यापन वैज्ञानिक पद्धति से हो यह अत्यन्त आवश्यक है। प्राकृत साहित्य बहु आयामी है। इसमे लिखे गए महाकाव्य उच्च कोटि के हैं। इन महाकाव्यों मे जहाँ साहित्यिक सौंदर्य भरपूर है, वहां ही वे दार्शनिक-मूल्यात्मक दृष्टि से भी ओतप्रोत हैं। डा• सोगाणी ने वाक्पतिराज द्वारा रचित महाकाव्य, गउडवहो मे से शाश्वत अनुभूतियों का चयन 'वाक्पतिराज की लोकानुभूति' के अन्तर्गत करके एक नया आयाम प्रस्तुत किया है। गाथाओं का हिन्दी अनुवाद मूल को स्पर्श करता हुआ है। उन गाथाओं का व्याकरणिक विश्लेषण देकर तो उन्होंने प्राकृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन को एक नई दिशा प्रदान की है। प्राकृत भारती इस प्रस्तुतीकरण के लिए उन्हें साधुवाद देता है। हमें लिखते हुए हर्ष होता है कि उन्होंने इसी प्रकार से 10 चयनिकाएँ तैयार की हैं जिनको प्राकृत भारती ने अपने प्रकाशन कार्य-क्रम में सम्मिलित किया है। ये सभी चयनिकाएँ पाठकों को विभिन्न विषयों का ज्ञान प्रदान करेंगी और प्राकृत के अध्ययन-अध्यापन की दिशा में महत्वपूर्ण सिद्ध होगी, ऐसी आशा की जाती है।

संस्थान के संयुक्त-सचिव एवं जैन विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् महोपाध्याय श्री विनयसागरजी का आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन-कार्य मे अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

पुस्तक के मुद्रण-कार्य के लिए संस्थान मनोज प्रिन्टर्स जयपुर के प्रति धन्यवाद ज्ञापन करता है।

राजरूप टांक
अध्यक्ष

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान
जयपुर

प्रस्तावना

यह सर्व विदित है कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही रगो को देखता हैं ध्वनियो को सुनना है, स्पर्शों का अनुभव करता है, स्वादो को चखता है तथा गधो को ग्रहण करता है। इस तरह उसकी सभी इन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं। वह जानता है कि उसके चारों ओर पहाड हैं तालाब हैं, वृक्ष हैं, मकान हैं मिट्टी के टीले हैं, पत्थर हैं इत्यादि। आकाश मे वह सूर्य, चन्द्रमा और तारों को देखता है। ये सभी वस्तुएँ उसके तथ्यात्मक जगत का निर्माण करती हैं। इस प्रकार वह विविध वस्तुओ के बीच अपने को पाता है। उन्हीं वस्तुओ से वह भोजन, पानी, हवा आदि प्राप्त कर अपना जीवन चलाता है। उन वस्तुओ का उपयोग अपने लिए करन के कारण वह वस्तु-जगत का एक प्रकार से सम्राट् बन जाता है। अपनी विविध इच्छाओ की तृप्ति भी बहुत सीमा तक वह वस्तु जगत से ही कर लेता है। यह मनुष्य की चेतना का एक आयाम है।

धीरे धीरे मनुष्य की चेतना एक नया मोड लेती है। मनुष्य समझने लगता है कि इस जगत मे उसके जैसे दूसरे मनुष्य भी हैं जो उसकी तरह हँसते हैं, रोते हैं, सुखी-दुखी होते हैं। वे उसकी तरह विचारो भावनाओ और क्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। चूँकि मनुष्य अपने चारों ओर की वस्तुओ का उपयोग अपने लिए करने का अभ्यस्त होता है, अत. वह अपनी इस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर मनुष्यों का उपयोग भी अपनी आकाक्षाओ और आशाओ की पूर्ति के लिए ही करता है। वह चाहने लगता है कि सभी उसी के लिए जीएँ। उसकी निगाह मे दूसरे मनुष्य वस्तुओ से अधिक कुछ नहीं

होते हैं। किन्तु उसकी यह प्रवृत्ति बहुत समय तक चल नहीं पाती है। इसका कारण स्पष्ट है। दूसरे मनुष्य भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति मे रत होते हैं। इसके फलस्वरूप उनमें शक्ति-वृद्धि की महत्वाकांक्षा का उदय होता है। जो मनुष्य शक्ति-वृद्धि में सफल होता है, वह दूसरे मनुष्यो का वस्तुग्रो की तरह उपयोग करने मे समर्थ हो जाता है। पर मनुष्य की यह स्थिति घोर तनाव की स्थिति होती है। अधिकाश मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे इस तनाव की स्थिति में से गुजर चुके होते हैं। इसमें कोई सदेह नहीं कि यह तनाव लम्बे समय तक मनुष्य के लिए असहनीय होता है। इस असहनीय तनाव के साथ-साथ मनुष्य कभी न कभी दूसरे मनुष्यो का वस्तुग्रो की तरह उपयोग करने मे असफल हो जाता है। ये क्षण उसके पुनर्विचार के क्षण होते हैं। वह गहराई से मनुष्य-प्रकृति के विषय मे सोचना प्रारम्भ करता है, जिसके फलस्वरूप उसमे सहसा प्रत्येक मनुष्य के लिए सम्मान भाव का उदय होता है। वह अब मनुष्य-मनुष्य की समानता और उसकी स्वतन्त्रता का पोषक बनने लगता है। वह अब उनका अपने लिए उपयोग करने के बजाय अपना उपयोग उनके लिए करना चाहता है। वह उनका शोषण करने के स्थान पर उनके विकास के लिए चिंतन प्रारम्भ करता है। वह स्व-उदय के बजाय सर्वोदय का इच्छुक हो जाता है। वह सेवा लेने के स्थान पर सेवा करने को महत्व देने लगता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसे तनाव-मुक्त कर देती है और वह एक प्रकार से विशिष्ट व्यक्ति बन जाता है। उसमे एक असाधारण अनुभूति का जन्म होता है। इस अनुभूति को ही हम मूल्यों की अनुभूति कहते हैं। वह अब वस्तु जगत मे जीते हुए भी मूल्य जगत में जीने लगता है। उसका मूल्य-जगत में जीना धीरे धीरे गहराई की ओर बढ़ता जाता है। वह अब मानव-मूल्यो की खोज में सलग्न हो जाता है। वह मूल्यो के लिए ही जीता है और समाज मे उनकी अनुभूति बढे इसके लिए अपना जीवन समर्पित कर देता है। यह मनुष्य की चेतना का एक दूसरा आयाम है।

वाक्पतिराज की

वाक्पतिराज[1] चेतना के इस दूसरे आयाम के धनी है। उनकी मूल्यात्मक अनुभूतियाँ सघन हैं। उनके अनुसार गुण मूल्यवान् हैं, महापुरुष गुणों के आगार होते हैं, सत्पुरुष गुणो के लिए प्रयत्नशील होते हैं। वाक्पतिराज वैभव एव धन को साधन-मूल्य के रूप मे स्वीकार करते हैं। उनके लिऐ काव्य-रस साध्य मूल्य है। वाक्पतिराज शाश्वत मूल्यों की अनुभूतियों के चक्षुओं से लोक को देखते हैं और अपने चारो ओर के वातावरण को मूल्यात्मक अनुभूतियों के परिप्रेक्ष्य मे समझने का प्रयास करते हैं। शाश्वत मूल्यों की पृष्ठभूमि से लोक को देखने के फलस्वरूप लोकानुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं। इन्हीं लोकानुभूतियों की चर्चा वाक्पतिराज ने की है। ये अनुभूतियाँ गम्भीर हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो वाक्पतिराज वर्तमान मे ही लोक का निरीक्षण कर रहे हों। इस प्रकार की कालातीत अनुभूतियाँ उनके हृदय में प्रस्फुटित हुई हैं। वे गुणवानों को देखते हैं, महापुरुषों के बारे मे सोचते हैं, शासको तथा अधिकारियों के प्रति खिन्नता प्रकट करते हैं। उनके विचार से मूल्यों में गिरावट के लिए शासक एव अधिकारी ही जिम्मेदार हैं। अब हम यहाँ 'वाक्पतिराज की लोकानुभूति' मे चयनित अनुभूतियों की चर्चा करेंगे।

गुण और गुणी व्यक्ति :

वाक्पतिराज का कहना है कि गुणी व्यक्ति गुणों का जानकार अपने में गुणों को प्रकट करने से होता है, किन्तु दुष्ट व्यक्ति पर-गुणों का उल्लेख

[1] वाक्पतिराज ने प्राकृत के महाकाव्य गउडवहो की रचना ई० सन् 736 के आस-पास की थी। इस महाकाव्य मे 1209 गाथाएँ हैं। यद्यपि यह एक प्रशस्ति काव्य है, तथापि उस काल मे अनुभूत मूल्यों का वर्णन वाक्पतिराज ने इसमे बडी ही कुशलता से किया है। "As Pandit observes this is one of the best and most remarkable parts of the poem and abounds in sentiments of the very highest order" (पृष्ठ XXXI) गउडवहो : सम्पादक : सुरु, (प्राकृत ग्रन्थ परिषद, अहमदाबाद) इन्हीं मूल्यों सम्बन्धी गाथाओं में से हमने 100 गाथाओं का चयन 'वाक्पतिराज की लोकानुभूति' शीर्षक के अन्तर्गत किया है।

न करने के कारण गुणों से परिचय प्राप्त करता है (6)। जो गुणवान् इस जगत में अपने गुणों का प्रदर्शन नहीं करता है वह ही गुणपूर्वक जी सकता है (30)। ऐसा प्रतीत होता है कि वाक्पतिराज को लोक में गुणी व्यक्ति असफल होते हुए दिखाई दिए। अतः उन्होंने कहा कि दोषों के जो गुण हैं वे यदि गुणों में आ जाएँ, तो ही गुणों को नमस्कार करना उचित है अर्थात् जैसे दोषों के द्वारा सांसारिक जीवन में सफलता मिल जाती है, वह यदि गुणों से मिल जाय तो ही गुणों को नमस्कार करना उचित है (37)। किन्तु वाक्पतिराज इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि कभी-कभी किन्हीं गुणी मनुष्यों का उत्कर्ष दूसरे गुणियों द्वारा आगे बढ़ने के कारण नहीं होता है। फिर भी, उनमें गुण हैं इस बात को नहीं भुला जा सकता है (82)। व्यक्ति के जीवन में गुणों के सिद्ध होने पर ही उसकी मति दोषों की तरफ नहीं झुकती है (38)। यह ध्यान रहे कि पर-गुणों की लघुता प्रदर्शन के द्वारा स्व में गुण उदित नहीं होते हैं (39)। वाक्पतिराज का यह दृढ़ विश्वास है कि गुणों से उत्पन्न होने वाली महिमा को गुणों के झूठे प्रदर्शन के द्वारा गुण रहित व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। सच तो यह है कि महा गुणी व्यक्ति भी अपने गुणों के प्रदर्शन के द्वारा तुच्छता अनुभव करता है (40)। यह विश्वास किया जाना चाहिए कि महिमा में और गुणों के फल में घनिष्ट सम्बन्ध है। किन्तु दुष्ट पुरुष महिमा को अगुणों से जोड़ता है, यह उसकी भूल है (41)। गुणवानों के हृदय में गुणों से उत्पन्न मद कभी प्रवेश नहीं करता है, क्या प्रदर्शित नहीं करने पर भी उनके गुण महान नहीं होते हैं (42)? गुणों के प्रेमी वाक्पतिराज का कहना है कि गुण अवश्य ही प्रशंसित होने चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो दोष फलेंगे और धीरे धीरे लोक भी अगुणों के आदर से गुण-शून्य हो जायगा (45)। गुणवानों की प्रशंसा के लिए मनुष्यों में उदार भाव, सरलता आदि गुणों का होना आवश्यक है (55)। इतना होते हुए भी वाक्पतिराज यथार्थवादी दृष्टिकोण को लिए हुए कहते हैं कि चूँकि प्रचुर विशेषताओं वाले मनुष्य बहुत ही थोड़े होते हैं, यहाँ तक कि एक विशेषता वाले मनुष्य भी सब जगह पर नहीं होते हैं तथा निर्दोष मनुष्य का तो मिलना भी कठिन

है। अत अल्प दोष को लिए हुए मनुष्य की भी प्रशंसा की जा सकती है (80)। गुण और दोष का मापदण्ड बतलाते हुए वाक्पतिराज कहते हैं कि जो मरे हुए मनुष्यों के विषय मे सुने जाते हैं वे दोष हैं और जो जीते हुए मनुष्यों के विषय में कहे जाते हैं वे गुण हैं (83)। व्यवहार से ही मनुष्य पहिचाना जाना चाहिए (84)। यह दुःख की बात है कि इस लोक मे लोग केवल मात्र दोषों को देखने वाले होते हैं, यहाँ कोई भी मनुष्य ऐसा दिखाई नहीं देता है जो गुणमात्र का ही ग्रहण करने वाला हो (85)। वास्तव मे मनुष्य मे गुणों की शोभा उसके ईर्ष्या से मुक्त होने पर ही होती है। गुणों का ग्रहकार पीडाकारक होता है (87)। ईर्ष्यारूपी अपवित्रता को हटाने के लिए विवेकरूपी अग्नि को जलाना जरूरी है (43)। किन्तु ईर्ष्या-भाव मनुष्य पर इतना हावी होता है कि उज्जवल स्वभावी व्यक्ति भी इससे बच नहीं पाते हैं (7)।

सत्पुरुष और लक्ष्मी :

वाक्पतिराज कहते हैं कि यद्यपि लक्ष्मी महान होती है, तो भी गुणी व्यक्ति उसको तुच्छ समझते हैं, इसीलिए लक्ष्मी का गुणो से विरोध पैदा हुआ है (61)। लक्ष्मी सत्पुरुष का शीघ्रता से आलिंगन नहीं करती है, इसका कारण यह प्रतीत होता है कि सत्पुरुष उसको अपने पास आने के लिए उपेक्षा भाव से आज्ञा देता है (62)। किन्तु यह भी निश्चित है कि सत्पुरुष के अभाव मे लक्ष्मी भी आलबन रहित अनुभव करती है। क्या किया जाय दैव के कारण लक्ष्मी का सत्पुरुष से न चाहा हुआ विरह होता है (63)? पूज्य लक्ष्मी तो धर्म से उत्पन्न होती है उसका सत्पुरुष से विरोध क्यों होना चाहिए (64)? यह आश्चर्य है कि लोक मे लक्ष्मी का कार्य विपरीतता को लिए हुए होता है। वह किसी के गुणों को दूर हटाती है तथा उसके लिए दोषों को देती है किसी के दोषो को छुपाती है और उसके लिए प्रसिद्धि देती है (66)। यदि गुणो और लक्ष्मी की तुलना की जाय, तो वाक्पतिराज

का कहना है कि गुण ही दुष्ट प्रतीत होते हैं, लक्ष्मी नहीं, क्योंकि लक्ष्मी गुणियों के पास जाने को तैयार है पर खेद है कि गुणी लक्ष्मी को बुलाते ही नहीं हैं (67)। वाक्पतिराज लोक में दुष्टों के पास लक्ष्मी देखते हैं तो कहते हैं कि वे लक्ष्मी के सदृश प्रतिबिम्ब ही हैं जो दुष्टों में स्थित हैं (64)। वाक्पतिराज का यह विश्वास है कि लक्ष्मी प्रतिबिम्ब आचरणवान् के ही होती है, अधमों के नहीं (65)। यह बात समझ लेनी चाहिए कि लक्ष्मी कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हो उसका अभाव गुणों से संतुष्ट हृदयों को पीड़ा नहीं पहुँचा सकता है (93)। वाक्पतिराज उन लोगों को लताड़ते हैं जो संपत्ति को ही साध्य मानते हैं और वे कहते हैं कि यदि अत्यधिक संपत्ति प्राप्त करके भी यदि किसी की तृष्णा नहीं मिटी है, तो यह ऐसी ही बात है जैसे कोई पर्वत पर चढ़कर गगन पर चढ़ना चाहता हो (96)। यथार्थवाद की मूर्ति वाक्पतिराज कहते हैं कि जो व्यक्ति निर्धन है उसके लिए ऊँचे उद्देश्य कैसे संभव हैं ? ऐसा व्यक्ति उच्च प्रयत्नों से रहित होता है (91)।

कृपण के स्वभाव को बतलाते हुए वाक्पतिराज का कहना है कि कृपण दूसरों में दान-गुण को सराहते हैं, किन्तु स्वयं दान देने में हिचकते हैं, ऐसे लोगों को लज्जा क्यों नहीं आती है (60) ? धन का दान महान् व्यक्ति करते हैं (50)। अपनी लोकानुभूति को अभिव्यक्त करते हुए वाक्पतिराज कहते हैं कि लोक में दरिद्र व्यक्ति का शीलवान् होना महत्वपूर्ण नहीं बन पाता है (17)।

लक्ष्मी की प्राप्ति के रहस्य को समझाते हुए वाक्पतिराज का कहना है कि धनी मनुष्य सदैव सुचरित्रों की खोज में रहता है, यद्यपि वह स्वयं गुणों से खिसकने की चिन्ता नहीं करता है (16)। यह आश्चर्य की बात है कि जब गुणी व्यक्ति लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं तो कभी-कभी दुर्गुणों में फँस जाते हैं, किन्तु इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जब गुण-रहित व्यक्ति लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं, तो वे गुणों से बहुत ही दूर चले जाते हैं (20)। खेद है कि तुच्छ

स्वभावी व्यक्ति गुणो को धन के लिए बेच देते हैं, पर उच्च स्वभावी व्यक्ति धन से गुणो को लाना चाहते हैं (21)। वाक्पतिराज इस बात से दु खी प्रतीत होते है कि लोक मे यह देखने मे आता है कि गुणी व्यक्ति वैभव पर आरूढ व्यक्तियो को तथा वैभवशाली व्यक्ति गुणो मे महान व्यक्तियों को कुछ भी नहीं समझते हैं। वे आपस मे एक दूसरे को छोटा करने मे लगे रहते हैं (44)। इससे हानि होती है और अच्छे कार्य नहीं हो पाते हैं।

सज्जन सत्पुरुष ·

वाकपतिराज के अनुसार सज्जनो को दो दु ख रहते हैं। एक ओर यह दु ख रहता है कि वे सत्पुरुषो के काल म उत्पन्न नहीं हुए तथा दूसरी ओर यह दु ख रहता है कि वे दुष्ट पुरुषो के काल मे उत्पन्न हुए (24)। जब कहीं सत्पुरुषों की बात को मूढ लोग नहीं समझते हैं, तो वे उस स्थान को छोडकर अन्य स्थान को चले जाते हैं (23)। यह उच्च कोटि का व्यवहार है कि सज्जन व्यक्ति अपने प्रति किए गए अपराध के कारण भी अपराधी के प्रति निम्न स्तर की क्रियाओ मे प्रवृत्ति नही करते है (36)। सत्पुरुषो का राजाओ से भी कोई प्रयोजन नहीं होता है। चूँकि सत्पुरुष आसक्ति-रहित होते हैं, इसलिए विधाता के साथ भी सघर्ष करने के लिए धैर्यरूपी कटिबद्ध से बँधे हुए रहते हैं (46)। सत्पुरुष वैभव का त्याग करते हैं, मरण का स्वागत करते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि यमराज भी उनके जीवन को बढ़ा देता है (52)। सत्पुरुषो का यश अवश्य फैलता है किन्तु धीरे-धीरे सत्पुरुषों के विषय में गुणो के उद्गार कम हो जाते हैं। सदैव किसी का यश नहीं चलता है (76)। सत्पुरुष असाधारण व्यक्ति होते हैं, उनमे कोई छोटा दोष रहे तो ही अच्छा है वरना उनके साथ कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकेगा (81)। सत्पुरुष किसी के एक गुण की भी प्रशसा करते हैं (86)। सत्पुरुष इस बात से ही धीरज धरते हैं कि उनके द्वारा किसी को तो सतोष होता ही है (89)। सज्जनों को उस समय दु ख होता है जब वे निर्धनता के

कारण किसी को स्नेह सहित भट नही दे पाते हैं (90)। वाकपतिराज का कथन है कि सज्जन व्यक्ति उदारता वश यदि किसी की प्रशसा करता है तो वह भी झूठ बोलने और चापलूसी करने के कारण दुष्टता को प्राप्त कर लेता है (95)। सज्जनो की कितनी ही निंदा की जाय उससे उनका कुछ भी नहीं बिगडता है बल्कि वह निंदा एक न एक दिन निन्दा करने वाले दुष्टो पर ही घटित हो जाती है (5)। वाकपतिराज कहते हैं कि दुष्ट का यह स्वभाव होता है कि वे नीच सगति मे ही प्रसन्न होते हैं यद्यपि सज्जन उनके निकट होते हैं। यह निश्चय ही स्वच्छाचारिता है कि रत्नो के सुलभ होने पर भी दुष्टो द्वारा काँच ग्रहण किया जाता है (58)।

शासक और अधिकारी वग

वाकपतिराज लोक मे यह देखते प्रतीत होते हैं कि शासक और अधिकारी वग का व्यवहार मूल्यों से रहित होता है। वे अपने स्वार्थों को ध्यान मे रखकर ही काय करते हैं। वाकपतिराज का कथन है कि यद्यपि राजा धन तथा स्त्रियो के रहस्य की चौकसी से सदैव शका करने वाले होते हैं तथापि यह आश्चय है कि दुष्ट व्यक्ति ही सदव उनके निकट रहते है (18)। वाकपतिराज को यह विश्वास नही होता है कि गुणी व्यक्ति कभी राजाओ के समीप रहेंगे। यदि कोई गुणी व्यक्ति राजाओ के घरो में पहुँचते हैं तो फिर वे सामान्य व्यक्ति ही होंगे (28)। सद्गुणो के कारण ही राजाओं के द्वारा सज्जनों से घृणा की जाती है। अत वाकपतिराज की सलाह है कि सज्जनों को राजाओ से आदर प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए (29)।

वाक्पतिराज का मत है कि सर्वोच्च अधिकारी अपनी मिथ्या प्रशसाओ के द्वारा दुष्टो से ठगे जाते हैं। व यह समझने लगते है कि उनमे प्रशसित गुण विद्यमान है (14)। अधिकारी उत्तम बुद्धि वालो तथा चरित्र वालों को मिलने के लिए तो आमत्रित करते हैं पर उनका यह विचारना होता है कि उनके स्वय के लाभ ही सर्वोपरि होते हैं (26)। अधिकारी अच्छे लोगो

का अनादर करते हैं इससे वे अच्छे लोग अशान्त भी होते हैं। पर अधिकारियों द्वारा दुष्टों का सम्मान देखकर वे अच्छे लोग एक क्षण में ही शान्त हो जाते हैं (27)। यह अजीब बात है कि अधिकारियों के हृदय सज्जनों का सम्मान सहन नहीं कर सकते हैं इसीलिए वे सज्जनों से दूर हट जाते हैं। यह ऐसे ही हैं जैसे कोई बोझ के भय से आभूषणों का त्याग कर देता हो (31)। अधिकारी दूसरे के गुणों को व्यक्त करने में बहुत कुटिल होते है (32)।

गुणों के आगार महापुरुष

महापुरुष, गुणों के आगार होते हैं। वे दूसरे के छोटे गुण से भी प्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु अपने बड़े गुण में भी उनको सतोष नहीं होता है। इस तरह से वे शीलवान् और विवेकवान् होते हैं (10)। महापुरुषों के गुणों से सब प्रथम उत्तम आत्माएँ ही प्रभावित की जाती हैं, उनके गुण सामान्य व्यक्तियों में तत्पश्चात् ही प्रकट होते हैं ठीक ही है चन्द्रमा की किरणें पहले पर्वत के ऊपरी भाग पर जाती हैं फिर धरती पर (11)। महापुरुष पर का कल्याण करने वाले होते हैं (12)। अपने हृदय की विशालता के कारण लोगों के विषय में वे अपनी सम्मतियाँ प्रकट नहीं करते हैं। ठीक ही है प्रकाश की मन्द किरणें महाभवनों में ही फिरती हैं वे बाहर नहीं आती हैं (48)। अत्यन्त ओजस्वी होने के कारण महापुरुषों की योजनाएँ सफल नहीं होती हैं। ठीक ही है, उज्ज्वलता के कारण बिजली का प्रकाश आँखों को चकाचौंध कर देता है (49)। महान लोग (महापुरुष) इच्छापूर्वक ही लक्ष्मी का त्याग करते हैं (50)। यदि महान लोगों को समाज कोई उपहार देता है, तो वे उस उपहार को बहुत बड़ा दर्शाते हैं (57)। यदि महान लोगों पर दुःख आते हैं तो भी वे सुखपूर्वक ही रहते हैं (71)। वाकपतिराज लोक में देखते हैं कि गुणों से महान व्यक्ति मानव जाति का उपकार करने वाले होते हैं फिर भी यह आश्चर्य है कि वे उच्च-स्थान को प्राप्त नहीं करते हैं और कभी-कभी उनके लिए जीविका का साधन भी नहीं होता है (53)। महापुरुष जिन

1 लोकानुभूति

मूल्यों को लोक मे स्थापित करना चाहते हैं, उनके लिए प्रशंसा न मिलने पर भी वे उनको स्थापित करने के लिए संघर्ष करते रहते हैं (92)। यद्यपि महापुरुष अपने को सम्मान से अलग कर लेते हैं, फिर भी उनकी कीर्ति की जड़ें गहरी होती जाती हैं (94)।

उपर्युक्त लोकानुभूतियों के अतिरिक्त वाक्पतिराज की कुछ फुट पुट अनुभूतियाँ भी हैं। वे कहते हैं जिनके हृदय काव्य-तत्त्व के रसिक होते हैं उनके लिए निर्धनता में भी कई प्रकार के सुख होते हैं और वैभव में भी कई प्रकार के दुःख होते हैं (3)। थोड़ी लक्ष्मी उपभोग की जाती हुई शोभती है, पर अधूरी विद्या हास्यास्पद होती है (4)। कवियों की वाणियों के कारण ही यह जगत हर्ष और शोकमय दिखाई देता है (1)। वाक्पतिराज कहते हैं कि कुछ घर ऐसे होते हैं जहाँ केवल नौकर दुष्ट होता है, कुछ घर ऐसे होते हैं जहाँ केवल मालिक दुष्ट होता है, तथा कुछ घर ऐसे होते हैं जहाँ मालिक और नौकर दोनों दुष्ट होते हैं (22)। वास्तव मे घर तो वे होते हैं जहाँ सभी को पूर्ण संतोष मिलता है (54)। इस जगत में कुछ लोग प्रशंसा प्राप्त नहीं करते हैं तथा कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो प्रशंसा से परे होते हैं। यहाँ प्रशंसा तो प्रशंसातीत तथा जघन्य मनुष्यों के बीच मे स्थित मनुष्यों की ही होती है (51)।

अध्यात्मवाद की सीढ़ी पर चढ़कर वाक्पतिराज कहते हैं कि सांसारिक सुखों को छोड़कर जो सुख हैं वे ही वास्तव में सुख हैं (68)। सांसारिक सुखों मे आसक्ति होने के कारण ही दुःख अधिक उग्र लगते हैं (69)। यदि कोई सांसारिक सुखो से अपने को दूर भी करले, तो भी चित्त को ये सुख आकर्षित करते रहते हैं। इन सुखों को त्यागना अत्यन्त कठिन है (70)।

लोकानुभूतियों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गउडवहो मे वाक्पतिराज ने जीवन के मूल्यात्मक पक्ष का सूक्ष्मता से अवलोकन किया है। इसी विशेषता से प्रभावित होकर यह कथन (वाक्पतिराज की लोकानुभूति)

पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है। गाथाओं का हिन्दी अनुवाद मूलानुगामी बनाने का प्रयास किया गया है। यह दृष्टि रही है कि अनुवाद पढने से ही शब्दों की विभक्तियाँ एवं उनके अर्थ समझ में आजाएँ। अनुवाद को प्रवाहमय बनाने की भी इच्छा रही है। कहाँ तक सफलता मिली है इसको तो पाठक ही बता सकेंगे। अनुवाद के अतिरिक्त गाथाओं का व्याकरणिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। इस विश्लेषण में जिन संकेतों का प्रयोग किया गया है, उनको संकेत सूची में देखकर समझा जा सकता है। यह आशा की जाती है कि व्याकरणिक विश्लेषण से प्राकृत को व्यवस्थित रूप से सीखने में सहायता मिलेगी तथा व्याकरण के विभिन्न नियम सहज में ही सीखे जा सकेंगे। यह सर्व विदित है कि किसी भी भाषा को सीखने के लिए व्याकरण का ज्ञान अत्यावश्यक है। प्रस्तुत गाथाओं एवं उनके व्याकरणिक विश्लेषण में व्याकरण के साथ-साथ शब्दों के प्रयोग भी सीखने में मदद मिलेगी। शब्दों की व्याकरण और उनका अर्थपूर्ण प्रयोग दोनों ही भाषा सीखने के आधार होते हैं अनुवाद एवं व्याकरणिक विश्लेषण जैसा भी बन पाया है पाठकों के समक्ष है। पाठकों के सुझाव मेरे लिए बहुत ही काम के होंगे।

आभार :

'वाक्पतिराज की लोकानुभूति' इस पुस्तक के लिए प्रो० नरहर गोविंद सुरु द्वारा सपादित गउडवहो के संस्करण का उपयोग किया गया है। इसके लिए प्रो० सुरु के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। 'गउडवहो' का यह संस्करण प्राकृत ग्रन्थ परिषद् अहमदाबाद से सन् 1975 में प्रकाशित हुआ है।

मेरे विद्यार्थी डॉ० श्यामराव व्यास, दर्शन विभाग, सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर का आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद एवं उसकी प्रस्तावना को पढ़कर उपयोगी सुझाव दिए। डा० प्रेम सुमन जैन,

जैन-विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, डा० उदयचन्द जैन जैन-विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, श्री मानमल कुदाल, आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर तथा डा० हुकमचन्द जैन जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के द्वारा जो सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए भी आभारी हूँ।

मेरी धर्मपत्नी श्रीमती कमलादेवी सोगाणी ने इस पुस्तक की गाथाओं का मूल ग्रन्थ से सहर्ष मिलान किया है। इसके लिए उनका आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर के सचिव श्री देवेन्द्रराजजी मेहता एवं संयुक्त-सचिव महोपाध्याय श्री विनयसागरजी ने जो व्यवस्था की है उसके लिए उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

सह प्रोफेसर, दर्शन विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान)
26 2 83

कमलचन्द सोगाणी

वाक्पतिराज के समान
लोकानुभूति के
धनी
स्व० पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ
को
सादर समर्पित

अनुक्रमणिका

वाक्पतिराज
की
लोकानुभूति

1 "इह् ते जअति कइणो जअमिणमो जाण सअल-परिणाम।
वाआसु ठिअ दीसइ आमोअ घण व तुच्छ व ॥

2. णिअआएँच्चिअ वाआएँ पत्तणो गारव णिवेसता।
जे एति पससच्चिअ जअति इह ते महा-कइणो॥

3. दोग्गच्चम्मि वि सोक्खाइँ ताण विहवे वि होति दुक्खाइ
कव्व-परमत्थ-रसिआइँ जाण जाअति हिअआइँ॥

4 सोहेइ सुहावेइ अ उवहुज्जतो लवो वि लच्छीए।
देवी सरस्सई उण असमग्गा किं पि विणडेइ॥

5 लग्गिहिइ ण वा सुअणे वयणिज्ज दुज्जणेहिँ भण्णत।
ताण पुण त सुअणाववाअ-दोसेण सघडइ ॥

6 पर-गुण-परिहार-परम्पराएँ तह ते गुणण्णुआ जाआ।
जाआ तेहिं चिअ जह गुणेहिँ गुणिणो पर पिसुणा॥

1 इस लोक मे वे कवि जीतते हैं (सफल होते हैं) जिनकी वाणियों (काव्यो) मे सकल अभिव्यक्ति विद्यमान (है)। (और इसलिए) यह जगत या तो हर्ष से पूर्ण या तिरस्कार योग्य देखा जाता है।

2. स्वकीय वाणी के द्वारा ही निज के गौरव को स्थापित करते हुए जो निश्चय ही प्रशंसा प्राप्त करते हैं, वे महाकवि इस लोक मे जीतते हैं (सफल होते हैं)।

3. जिनके हृदय काव्य-तत्त्व के रसिक होते हैं, उन (व्यक्तियो) के लिए निर्धनता मे भी (कई प्रकार के) सुख होते हैं (तथा) वैभव मे भी (कई प्रकार के) दुख होते हैं।

4 लक्ष्मी की थोडी मात्रा भी उपभोग की जाती हुई शोभती है तथा सुखी करती है, किन्तु किंचित् भी अपूर्ण देवी सरस्वती (अधूरी विद्या) उपहास करती है।

5. दुर्जनो द्वारा कही हुई निंदा सज्जनो को लगेगी अथवा नही लगेगी (कहा नही जा सकता), किन्तु वह (निंदा) सज्जनो की निंदा (से उत्पन्न) दोष के कारण उन (दुर्जनो) के (ही) घटित हो जाती है।

6. पर-गुणो का उल्लेख न करने की परिपाटी के कारण वे अत्यन्त दुष्ट व्यक्ति गुणों के जानकार वैसे ही हुए (हैं) जैसे गुणी (व्यक्ति) (अपने मे) उन गुणों के कारण (ही) (गुणो के जानकार) हुए (हैं)।

7. ज णिम्मल. वि खिज्जति हत विमलेहिँ सज्जण-गुणेहिं ।
त सरिस ससि-अर-कारणाएँ करि-दत-विअणाए ॥

8 जाण असमेहिँ विहिआ जाअइ णिदा समा सलाहा वि ।
णिंदा वि तेहिँ विहिआ ण ताण मण्णे किलामेइ ॥

9. बहुओ सामण्ण-मइत्तणेण ताणं परिग्गहे लोओ ।
काम गआ पसिद्धि सामण्ण-कई अओच्चेअ ॥

10. हरइ अणू वि पर-गुणो गरुअम्मि वि णिअ-गुणे ण सतोसो ।
सीलस्स विवेअस्स अ सारमिण एत्तिअ चेअ ॥

11 इअरे वि फुरन्ति गुणा गुरुण पढम कउत्तमासंगा ।
अग्गे सेलग्ग-गआ इन्दु-मऊहा इव महीए ॥

12. णिव्वाडताण सिर्व सअलं चिअ सिवअर तहा ताण ।
णिव्वडइ किं पि जह ते वि अप्पणा विम्हअमुवेंति ॥

13 पासम्मि अहकारी होहिइ कह वा गुणाण विवरम्मि ।
मव्व ण गुण-गम-मग्गो गुणरमिच्छति गुण-गामा ।।

14 मोह-सलाहाहिं तहा पहुणो पिसुणेहिं वेलविज्जंति ।
जह णिव्वडिएसु वि णिम-गुणेसु ते किं प चिंतेंति ।।

15 मुलहं हि गुणाहाण सगुणाहाराण णणु णरिदाण ।
अण्णसिअव्व-मग्गा कत्तो वि गुणा दारद्दाण ।।

16 तं खलु सरीएँ रहस्सं जं सुचरिअ-मग्गणत्क-हिअओ वि ।
अप्पाणमोसरंत गुणेहिं लोओ ण लक्खेइ ।।

17 लोएहिं अगहिअंचिअ सीलमविहव-ट्ठिअं पसण्णं पि ।
सोसमुवेइ तहिंचिअ कुसुम व फलग्ग-पडिलग्ग ।।

18. णिच्च धण-दार-रहस्स-रक्खणे संकिणो वि अच्छरिअं ।
आसण्ण-णीअ-वग्गा जं तहवि णराहिवा होंति ।।

13. गुणों के समीप होने पर अर्थात् गुणों के सद्भाव मे वह (कोई) सम्भवतया ग्रहङ्कारी हो जाएगा, (किन्तु) (गुणो के) ग्रभाव मे (वह-कोई ग्रहङ्कारी) कैसे (होगा) ? गुणो के इच्छुक गुणी मद रहित (होते हैं), (पर वे (ऐसे) गर्व को (ग्रवश्य) चाहते हैं जो गुणो पर ठहरा हुग्रा है ।

14 मिथ्या प्रशसाग्रो के द्वारा सर्वोच्चाधिकारी दुष्टो द्वारा इस प्रकार से ठगे जाते हैं कि (वे) बहुत ग्रशो तक उन (मिथ्या प्रशसाग्रो) को सिद्ध हुए निज गुणो मे ही विचार लेते हैं (समझ लेते हैं) ।

15. गुणियों के ग्राश्रय राजाग्रो के लिए गुणो की प्राप्ति करना ग्रवश्य ही सुलभ (है), किन्तु दरिद्रो के लिए (गुणो की प्राप्ति करना) कहाँ से सम्भव (है) ? (उनके लिए) गुण (उनके ही द्वारा) खोजे जाने योग्य मार्ग (होते हैं) ।

16 वास्तव मे लक्ष्मी की (प्राप्ति का) वह (यह) रहस्य (है) कि (धनी) मनुष्य सुचरित्र (व्यक्तियो) की खोज मे स्थिर हृदय (होता है), यद्यपि वह गुणो से निज को फिसलते हुए नहीं देखता है ।

17 दरिद्र मे ग्रवस्थित निर्मल शील भी लोक के द्वारा बिल्कुल स्वीकार नहीं किया गया (है) । (ग्रत वह) उस ग्रवस्था मे ही फल के ग्रग्र भाग पर लगे हुए फूल की तरह कुम्हलान को प्राप्त करता है ।

18. यद्यपि राजा धन तथा स्त्रियो के रहस्य की चौकसी मे (व्यक्तियों के प्रति) सदैव शका करने वाले होते हैं, तथापि (यह) ग्राश्चर्य (है) कि दुष्ट व्यक्ति (उनके) समीप (सदैव) विद्यमान रहते हैं ।

19. पेच्छह विवरीअमिमं बहुआ मइरा मएइ ण हु थोवा।
लच्छी उण थोवा जह मएइ ण तहा इर बहूआ।।

20. जे णिव्वडिअ-गुणा वि हु सिरिं गआ ते वि णिग्गुणा होंति।
ते उण गुणाण दूरं अगुणच्चिअ जे गआ लच्छिं।।

21 एक्के लहुअ सहावा गुणेहिं लहिउं महंति धण-रिद्धिं।
अण्णे विसुद्ध-चरिआ विहवाहि गुण विमग्गंति।।

22. परिवार-दुज्जणाइं पहु-पिसुणाइ पि होंति गेहाइ।
उहअ-खलाइं तहच्चिअ कमेण विसमाइ मण्णत्था।।

23. मूढेंजणम्मि अ-मुणिअ गुण-सार-विवेअ-वइअरुव्विग्गा।
किं अण्ण सप्पुरिसा गामाओ वण पवज्जंति।।

19. इस विपरीत बात को देखो' बहुत मदिरा उन्मत्त बनाती है, किन्तु थोडी नहीं; पर थोडी लक्ष्मी जैसी उन्मत्त बनाती है, वैसी (उन्मत्त) निस्सन्देह प्रचुर (लक्ष्मी) नहीं (बनाती है)।

20 आश्चर्य ! (जिनके द्वारा) गुण धारण किये गये (है) (ऐसे व्यक्ति) अर्थात् (गुणी व्यक्ति) जिन्होंने भी लक्ष्मी को प्राप्त किया (है) वे ही (लक्ष्मी को प्राप्त कर लेने पर) गुण रहित हो जाते हैं। (तो) फिर गुण-रहित, (व्यक्ति), जिन्होंने लक्ष्मी को प्राप्त किया (है) वे (तो) (लक्ष्मी को प्राप्त कर लेने पर) गुणों से (बहुत) ही दूर (हो जाते हैं)।

21. कुछ (व्यक्ति) (जिनके) स्वभाव तुच्छ (हैं) गुणो के द्वारा धन-वैभव को प्राप्त करने की इच्छा करते है, दूसरे (व्यक्ति) (जिनके) चरित्र विशुद्ध (है) वैभव के द्वारा गुणो को चाहते हैं।

22. घर (उत्तरोत्तर) क्रम से कष्टदायक (होते हैं): (जहाँ) (केवल) नौकर दुष्ट (हैं), (जहाँ) (केवल) मालिक दुष्ट (हैं) तथा (जहाँ) दोनों दुष्ट (हैं)। इस प्रकार ही तुम (सब) जानो।

23. (किसी) प्रसग मामले) में मूढ जनो द्वारा (सत्पुरुषो के) गुणो का महत्त्व (तथा) (उनके) सूक्ष्म विचार नही समझे हुए होने के कारण (वे) सत्पुरुष उद्विग्न (हो जाते हैं), (तथा) (कोई नही जानता है कि) (वे) गाँव से किस अन्य आवास-स्थल को चले जाते है ?

24. दुक्खेहि दोहिँ सुश्रणा श्रहिऊरिज्जंति दिग्रसिश्रंचेश्र।
सुपुरिस–काले श्र ण जं ज जाश्रा णीश्र-काले श्र ।।

25. सुमईए सुचरिश्राण श्र देंता श्रालोश्रएां पसंगं च।
पहुणो जं णिश्रश्र-फल त ताण फल ति मण्णति ।।

26. श्रण्णो वि णाम विहवी सुहाइं लीलासहाइं णिव्विसइ।
श्रसमजस-करणेच्चेश्र णवर णिव्वडइ पहुभावो ।।

27. श्रदोलंताण खणं गरुश्राण श्रणाश्ररे पहु-कश्रम्मि।
हिश्रश्र खल - बहुमाणावलोश्रणे णवर णिव्वाइ ।।

28. पत्थिव-घरेसु गुणिणो वि णाम जइ केवि सावसास व्व।
जण - सामण्ण त ताण किंपि श्रण्णच्चिश्र णिमित्तं ।।

24. सज्जन दो दुःखों द्वारा प्रतिदिन ही व्याप्त किए जाते हैं; एक ओर (यह दुःख है) कि (वे) सत्पुरुषो के काल में उत्पन्न नही हुए (तथा) दूसरी ओर (यह दुःख है) कि (वे) दुष्ट (पुरुषों) के काल मे (उत्पन्न हुए हैं)।

25. उत्तम बुद्धिवालो के लिये तथा श्रेष्ठ चरित्रवालों के लिये साक्षात्कार एवं अन्त सम्पर्क को स्वीकार करते हुए सर्वोच्च अधिकारी इस प्रकार मानते हैं (कि) जो लाभ (उन सर्वोच्च अधिकारियों को) अपने लिये (है) वह (ही) लाभ उन (उत्तम बुद्धिवालो तथा श्रेष्ठ चरित्र वालो) के लिये (भी) है।

26. वास्तव मे असाधारण धनाढ्य (व्यक्ति) भी आनन्द के योग्य सुखों को भोगते हैं, (किन्तु) केवल (वे व्यक्ति) (जिनके) पद शक्तिशाली (होते हैं) मूर्खतापूर्ण (कार्य) करने मे अर्थात् मूर्खतापूर्ण सुखो को भोगने में ही सिद्ध होते हैं।

27. सर्वोच्च अधिकारियों द्वारा किये गये अनादर से अशान्त होते हुए महापुरुषो का हृदय (सर्वोच्च अधिकारियो द्वारा) दुष्टों के किये गए) सम्मान के अवलोकन से केवल एक क्षण मे शात हो जाता है।

28. यदि कोई नाम से गुणी (व्यक्ति। राजाओ के घरों मे थोडी भी पहुँच सहित होते हैं (तो) (यह समझना चाहिये कि) वह (या तो) जन-समूह की तरह (उनकी) सामान्यता है (या फिर) उनके लिये कुछ अन्य ही कारण है।

लोकानुभूति

29. वच्चंति वेस - भावं जेहिँचिम्र सज्जणा णरिंदाण।
तेहिँचिम्र बहुमाणं गुणेहिँ किं णाम मग्गति॥

30. को व्व ण परंमुहो णिग्गुणाण गुणिणो ण क व दूमेंति।
जो वा ण गुणी जो वा ण णिग्गुणो सो सुहं जिम्रइ॥

31. जं सुम्रणेसु णिम्रत्तइ पहुण पडिवत्ति - णीसह हिम्रम्र।
तं खु इमं रम्रणाहरण - मोम्रणं गारव - भएण॥

32. म्रविवेम्र - संकिणोच्चेम्र णिग्गुणा पर-गुणे पसंसंति।
लद्ध - गुणा उण पहुणो बाढं वामा पर - गुणेसु॥

33 सव्वोच्चिम्र स-गुणुक्करिस-लालसो वहइ मच्छरुच्छाहं।
ते पिसुणा जे ण सहंति णिग्गुणा पर - गुणुग्गारे॥

34. सुम्रणत्तणेण घेप्पइ थोएणंचिम्र परो सुचरिएण।
दुक्ख - परिम्रोसिम्रव्वो म्रप्पाणोच्चेम्र लोम्रस्स॥

35 (वह) गर्व (जो) गुणों से (होता है) (उसको) विनय मे स्थित (व्यक्तियों) द्वारा भी छोडने के लिये (समर्थ होना) कैसे सम्भव है ? वही (गर्व) जो (बाह्य मे) त्यक्त होने पर (भी) (अन्तरग) हृदय मे दुगने से भी अधिक रूप से स्फुरित होता है।

36 यदि पीडा दिये जाते हुए सज्जन हृदय मे कुछ विचारते हैं (तो) मै (यह) नही जानता हूँ, किन्तु (इतना निश्चित है कि) (वे) (अपने प्रति) अपराध मे (अपराधी के प्रति) भी सावद्य क्रियाओं मे प्रवृत्ति नही करते हैं।

37 (यह ठीक है कि) गुण दोषो के लिए तथा दोष भी गुण-समूह के लिए महिमा प्रदान करते हैं, (किन्तु) दोषो के जो गुण (हैं), वे यदि गुणो के (हो) तो उन (गुणो) के लिए नमस्कार। (जैसे दोषों के द्वारा सासारिक जीवन मे सफलता मिल जाती है, वह यदि गुणो से मिल जाय तो गुणो को नमस्कार)

38. दोषो को खूब भोग करके (भी) आत्मा गुणो को (अपने मे) अवस्थित करने के लिए समर्थ होती है, किन्तु गुणो के सिद्ध होने पर (तो) दोषों मे (बिल्कुल ही) मति नहीं रहती है।

39 जैसा कि लोग कहते हैं कि पर गुणो की लघुता (प्रदर्शन) के द्वारा (स्व मे) गुण उदित होते हैं, वास्तव मे (यह) भूल है। (सच यह है कि) (स्व मे) गुणो की महानता का कारण आत्म-सम्मान ही (है)।

40 (गुणो से उत्पन्न होने वाली) उस महिमा को (गुणो के झूठे प्रदर्शन के द्वारा) यथार्थ मे गुण रहित भी (व्यक्ति कैसे धारण करेंगे ? (सच यह है कि) गुणो मे महान (व्यक्ति) भी, जिस (समय) मे (उनके द्वारा अपने) गुणो का प्रदर्शन किया ना है, (उस समय मे) मानो तुच्छता को प्राप्त कर लेते है।

35. मोत्तु गुणावलेवो तीरइ कह णु विणय–ट्ठिएहिं पि ।
मुक्कम्मि जम्मि सोच्चिग्र विउणग्रर फुरइ हिग्रग्रम्मि ।।

36. दूमिज्जता हिग्रएण किं पि चिंतेंति जइ ण जाणामि ।
किरियासु पुण पग्रट्ट ति सज्जणा णावरद्धे वि ।।

37. महिम दोसाण गुणा दोसा वि हु देंति गुण-णिहाग्रस्स ।
दोसाण जे गुणा ते गुणाण जइ ता णमो ताण ।।

38. ससेविऊण दोसे ग्रप्पा तीरइ गुण ट्ठिग्रो काउ ।
णि०वडिग्र-गुणाण पुणो दोसेसु मई ण सठाइ ।।

39. ग्रह मोहो पर-गुण-लहुग्रग्राएँ ज किर गुणा पयट्ट ति ।
ग्रप्पाण-गारवचिग्र गुणाण गरुग्रत्तण-णिमित्त ।।

40. वुब्भते जम्मि गुणुण्णग्रा वि लहुग्रत्तण व पावेंति ।
कह णाम णिग्गुणच्चिग्र त वहति माहप्पं ।।

41. (वास्तव मे) महिमा मे (और) गुणो के फल मे (संबंध है), (किन्तु) दुष्ट पुरुष (जो सोचते हैं कि) अगुणों के फल के द्वारा महिमाएँ बँधी हुई (हैं), (वे) गुणो (के अन्दर) से विपरीत उत्पत्ति को चाहते हैं।

42. गुणो से उत्पन्न मद सुपुरुषों के हृदय मे कभी प्रवेश नहीं करता है इस तरह पूर्णतः अप्रदर्शित मद के कारण भी उनके गुण महान होते हैं।

43. तब तक ही ईर्ष्यारूपी अपवित्रता (रहती है), जब तक विवेक स्पष्ट रूप से प्रकट नही होता है, (ठीक ही है) एक ओर पवित्र अग्नि द्वारा जलना हुआ, दूसरी ओर धूँआ विदा हुआ।

44 आश्चर्य! गुणी (व्यक्ति) वैभव पर आरूढ (व्यक्तियों) के लिए (तथा) वैभवशाली (व्यक्ति) गुणो मे महान् (व्यक्तियो) के लिए कुछ भी नहीं (हैं)। (वे) आपस मे (एक दूसरे को) (इस तरह से) छोटा करते हैं, जैसे जो (लोग) पर्वतो के नीचे भाग पर (और) (उनके) शिखर पर (स्थित रहते हुए) (एक दूसरे को छोटा करते हैं)।

45. जैसे जैसे इस समय गुण शोभायमान नही होंगे, (तथा) जैसे-जैसे (इस समय) दोष फलेंगे, वैसे-वैसे जगत भी अगुणो के आदर से गुण-शून्य हो जायगा।

46. (सत्पुरुषों का) राजाओं से भी क्या प्रयोजन (है)? (जिनके द्वारा) विवेक से सकल इच्छाएँ छोडी गई हैं (तथा) (जो) आसक्ति रहित (हैं), (वे) सत्पुरुष विधाता के साथ भी (संघर्ष करने के लिए) धैर्य रूपी कटिबंध से बँधे हुए होते हैं।

41. माहप्पे गुण-कज्जम्मि अगुण-कज्जे णिबद्ध-माहप्पा ।
विवरीअ उप्पत्ति गुणाण इच्छति कावुरिसा ।।

42. गुण सभवो मओ सुपुरिसाण संकमइ णेअ हिअअम्मि ।
तेण अणिव्वूढ-मअ व्व ताण गरुआ गुणा होति ।।

43 ता चेअ मच्छर-मल जाव विवेओ फुड ण विप्फुरइ ।
ज लअ च भअवआ हुअवहेण धूमो अ विणिअत्तो ।।

44 गुणिणो विहवारूढाण विहविणो गुरु गुणाण णहु किंपि ।
लहुअन्ति व अण्णोण्ण गिरीण जे मूल हिहरेसु ।।

45. जह जह णग्घति गुणा जह जह दोसा अ सपइ फलति ।
अगुणाअरेण तह तह गुण-सुण्ण होहिइ जअ पि ।।

46 किं व णरिंदेहिं विवेअ मुक्क सअलाहिलास-णीसगा ।
विहिणो वि धीर-पाइबद्ध-परिअरा होंति सप्पुरिसा ।।

41. (वास्तव मे) महिमा मे (और) गुणो के फल मे (सबंध है), (किन्तु) दुष्ट पुरुष (जो सोचते हैं कि) अगुणो के फल के द्वारा महिमाएँ बँधी हुई (हैं), (वे) गुणो (के अन्दर) से विपरीत उत्पत्ति को चाहते हैं।

42. गुणो से उत्पन्न मद सुपुरुषों के हृदय मे कभी प्रवेश नही करता है इस तरह पूर्णतः अप्रदर्शित मद के कारण भी उनके गुण महान होते हैं।

43 तब तक ही ईर्ष्यारूपी अपवित्रता (रहती है), जब तक विवेक स्पष्ट रूप से प्रकट नही होता है, (ठीक ही है) एक ओर पवित्र अग्नि द्वारा जलना हुआ, दूसरी ओर धूँआ बिदा हुआ।

44 आश्चर्य ! गुणी (व्यक्ति) वैभव पर आरूढ (व्यक्तियो) के लिए (तथा) वैभवशाली (व्यक्ति) गुणो मे महान् (व्यक्तियो) के लिए कुछ भी नहीं (हैं)। (वे) आपस मे (एक दूसरे को) (इस तरह से) छोटा करते हैं, जैसे जो (लोग) पर्वतो के नीचे भाग पर (और) (उनके) शिखर पर (स्थित रहते हुए) (एक दूसरे को छोटा करते हैं)।

45. जैसे जैसे इस समय गुण शोभायमान नही होगे, (तथा) जैसे-जैसे (इस समय) दोष फलेंगे, वैसे-वैसे जगत भी अगुणो के आदर से गुण-शून्य हो जायगा।

46. (सत्पुरुषो का) राजाओ से भी क्या प्रयोजन (है) ? (जिनके द्वारा) विवेक से सकल इच्छाएँ छोडी गई हैं (तथा) (जो) आसक्ति रहित (हैं), (वे) सत्पुरुष विधाता के साथ भी (संघर्ष करने के लिए) धैर्य रूपी कटिबंध से बँधे हुए होते हैं।

47. विण्णाणालोग्रोच्चिग्र कुमईण विसारग्र पग्रासेइ ।
कसणाण मणीण पिव तेग्र-प्फुरण - सिग्र चेग्र ॥

48. हिग्रग्र-विग्रडत्तणेण गरुग्राण ण णिव्वडंति वुढीग्रो ।
घालति महा - भवणेसु मद - किरणच्चिग्र पईवा ॥

49. ग्रच्चंत-विएएण वि गरुग्राण ण णिव्वडंति सकप्पा ।
विज्जुज्जोग्रो वहलत्तणेण मोहेइ ग्रच्छीइ ॥

50. जे गेण्हंति सयचिग्र लच्छि ण हु ते ण गारव - ट्ठाण ।
ते उण केवि सयचिग्र दालिद्द घेप्पए जेहि ॥

51. एक्के पावंति ण त ग्रण्णे परग्रो व्व तीए दीसति ।
इग्रराण महग्घाण च ग्रतरे णिवसइ पसंसा ॥

52. मरणमहिणंदमाणाण ग्रप्पणच्चेग्र सुवक - विहवाण ।
कुणइ कुविग्रो कग्रतो जइ विवरीग्र सु - पुरिसाण ॥

47 ज्ञान का प्रकाश ही कुमतियों की निस्सारता को प्रकाशित करता है। जैसे काले मणियों के (कालेपन को) सफेद प्रकाश की सफेद दमक ही (प्रकाशित करती है)।

48 हृदय की विशालता के कारण महान् (व्यक्तियों) की सम्मतियाँ प्रकट नहीं होती हैं। (ठीक ही है) दीपक से (उत्पन्न) मद-किरणें महा-भवनों में ही फिरती हैं अर्थात् बाहर नहीं आती हैं।

49 अत्यन्त ओजस्वी होने के कारण ही महान् (व्यक्तियों) के सकल्प सफल नहीं होते हैं। (ठीक ही है) पुष्कलता के कारण बिजली का प्रकाश आँखों को अस्त-व्यस्त कर देता है।

50. वास्तव में (यह) नहीं (है) (कि) जो स्वय ही लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं, वे गौरव के योग्य नहीं हैं, किन्तु वे कुछ (ही) (महान् लोग हैं) जिनके द्वारा स्वय ही धन-हीनता ग्रहण की जाती है।

51. कुछ (लोग) उसको (प्रशंसा को) प्राप्त नहीं करते हैं, तथा कुछ (लोग) उसके (प्रशंसा के) परे देखे जाते हैं, प्रशसा (तो) अति-सम्माननीय तथा जघन्य (मनुष्यों) के बीच में (स्थित व्यक्तियों की) होती है।

52. यमराज, यदि कुपित (है) (तो भी) मरण का स्वागत करते हुए (तथा) स्वयं के द्वारा ही वैभव का त्याग किए हुए सत्पुरुषों के लिए विपरीत करता है (अर्थात् उनके जीवन को बढा देता है)

53 उवग्ररणीभूग्र-जग्रा ण हु णवर ण पाविग्रा पहु - ट्ठ ण ।
उवग्ररण पि ण जाग्रा गुण - गुरुणो काल - दोसेण ।।

54. विसइच्चेग्र सरहसं जेसु कि तेहिं गंडिग्रासेहिं ।
णिक्खमइ जेसु परिग्रोस - णिब्भरो ताइं गेहाइ ।।

55 उज्झइ उग्रार-भाव दक्खिण्ण करुणग्र च ग्रामुग्रइ ।
काण वि समोसरती छिप्पइ पुहवी वि पावेहिं ।।

56 ग्रंतोच्चिग्र णिहुग्रं विहसिऊण ग्रच्छंति विम्हिग्रा ताहे ।
इग्रर - सुलहं पि जाहे गरुग्राण ण किंपि संपडइ ।।

57. दावेंति सज्जणाण इच्छा - गरुग्र परिग्गह गरुग्रा ।
मग्रण - विणिवेस - दिट्ठं महा - मणीण व पाडबिंब ।।

58 साहीणं - सज्जणा वि हु णीग्र - पसंगे रमंति काउरिसा ।
सा इर लीला ज काम - धारण सुलह - रग्रणाण ।।

39

53. (यद्यपि) गुणों मे महान् (व्यक्ति तो) मानव जाति के अन्दर उपकार करने वाले हुए (हैं) (फिर भी) आश्चर्य ! (वे) न केवल उच्च स्थान को नही पहुँचे (हैं) (पर) काल-दोष से (उन्होने) जीविका का साधन भी नही पाया है ।

54 (मनुष्य) जिन (घरो) मे उत्सुकता से प्रवेश करता है, (किन्तु) छिन्न-आशाओं से ही बाहर निकलता है, उन (घरों) से क्या लाभ ? जिन (घरों) मे पूर्ण सतोष (होता है) वे (ही) वास्तव मे) घर (हैं) ।

55. (यदि कोई) किन्हीं के लिए भी उदार भाव को छोडता है, सरलता और दया को त्याग देता है, (तो) (ऐसे मनुष्यो से) दूर भागती हुई पृथ्वी भी पापो से स्पर्श करदी जाती है ।

56 जघन्य (व्यक्ति) के लिए सुलभ भी (वस्तु) जब महान् (व्यक्ति) के लिए थोडी सी (भी) सिद्ध नहीं होती है तब (वे) विस्मित हुए आतरिक रूप से ही हँस कर चुपचाप बैठ जाते हैं ।

57. महान् (लोग) प्राप्त किए गए उपहार को अभिलाषा से (अत्यधिक) बडा (उपहार) सज्जनो को दर्शाते हैं जैसे मोम-रचना के द्वारा देखा गया उत्तम मणियो का प्रतिबिंब (बडा दिखाई देता है) ।

58. आश्चर्य ! दुष्ट पुरुष नीच-संगति मे ही प्रसन्न होते हैं, (यद्यपि) सज्जन (उनके) निकट (होते हैं) । वह निश्चय ही (उनकी) स्वेच्छाचारिता है कि रत्नो के सुलभ होने पर (भी) (उनके द्वारा) काँच ग्रहण (किया जाता है) ।

59. थाम-त्थाम-णिवेसिअ - सिरीण गरुआण कह णु दालिद्दं ।
एक्का उण किविण - सिरी गआ अ मूल च्च पम्हुसिअ ।।

60. किविणाण अण्ण - विसए दाण - गुणे अहिसलाहमाणाण ।
णिअ - चाए उच्छाहो ण णाम कह वा ण लज्जा वि ।।

61. परमत्थ - पाविअ - गुणा गरुअ पि हु पलहुअ व मण्णति ।
तेण सिरीए विरोहो गुणेहिं णिक्कारण ण उण ।।

62. भुमआ - भगाणत्ता वि सुवुरिस ज ण तुरिअमल्लिअइ ।
त मण्णे धावती रहसेण सिरी परिक्खलइ ।।

63. णणु णासमणवलंबा एइच्चिअ सा वि सुवुरिसाभावे ।
देव्व-वसा तेण सिरीए होइ णासंसिओ विरहो ।।

59. स्थान-स्थान पर, (महापुरुषों के द्वारा) स्थापित लक्ष्मी के कारण उन (महापुरुषों) के लिए निर्धनता कैसे संभव है ? किन्तु कृपण की लक्ष्मी अकेली (है), यदि (वह) नष्ट हुई (तो) (उसका) मूल ही भुला दिया गया अर्थात् भुला दिया जायगा ।

60 दूसरों के विषय मे दान-गुण को सराहते हुए (भी) कृपण के निज-त्याग मे उत्साह नहीं है, और आश्चर्य (उसके) लज्जा भी कैसे नही है ?

61. चूँकि (मनुष्य) (जिनके द्वारा। वास्तविक गुण प्राप्त किए गए हैं, महान् भी (लक्ष्मी को) तुच्छ (वस्तु) की तरह मानते हैं, इसलिए लक्ष्मी का गुणों से विरोध वास्तव मे बिना कारण नहीं है ।

62. चूँकि (सत्पुरुष के द्वारा) भौं सिकुड़न (उपेक्षा) से आज्ञा दी गई भी लक्ष्मी सत्पुरुष को शीघ्रता से आलिंगन नही करती है, मैं सोचता हूँ उस कारण से ही (लक्ष्मी) (सत्पुरुषों की ओर) वेग से दौडती हुई (भी) स्खलित हो जाती है ।

63. सत्पुरुष के अभाव मे वह (लक्ष्मी) भी, जो) निस्संदेह आलंबन रहित (हो जाती है), बिल्कुल नाश को प्राप्त होती है । (इस तरह से) दैव के कारण उससे (सत्पुरुष से) लक्ष्मी का न चाहा हुआ विरह होता है ।

64. पूज्य लक्ष्मी धर्म से उत्पन्न (होती है)। (उसका) सज्जन से विरोध कैसे होना चाहिए ? वे लक्ष्मी के सदृश अलक्ष्मियाँ ही हैं जो दुष्टों में (स्थित हैं)।

65. जा विउला आओ चिरं जा परिहोइज्जलाओ लच्छीओ।
आआरधराणंचिअ ताओ ण उणो अ इअराण ॥

66. अवणेइ देइ अ गुणे दोसे णूमेइ देइ अ पआसं।
दीसइ एस विरुद्धो व्व को वि लच्छीए विण्णासो ॥

67. अण्णोण्ण लच्छिगुणाण णूण विसुणा गुणच्चिअ ण लच्छी।
लच्छी माहिलेइ गुणे लच्छि ण उणो गुणा जेण ॥

68 दुक्खाभावो ण सुह ताइं वि ण सुहाइं जाइ सोक्खाइं।
मोत्तूण सुहाइ सुहाइ जाइ ताइच्चिअ सुहाइ ॥

69. सुह-संग-गारवेच्चिअ हवंति दुक्खाइ दारुणअराइ।
आलोउक्करिसेच्चिअ च्छाया बहलत्तणमुवेइ ॥

70 सुह-संगो सुह-विणिवत्तिएक्क-चित्ताण अविरअं फुरइ।
अंगुलि-पिहिआण रवो अव्वोच्छिण्णो व्व कण्णाण ॥

वाक्पतिराज की

65. जो लक्ष्मियाँ विपुल (हैं), जो दीर्घ काल तक (रहती है), जो बहुत प्रयोग से उज्ज्वल होती हैं, वे (लक्ष्मियाँ) आचरण धारण करने वालो के ही (होती हैं), किन्तु जघन्यो के निश्चय ही (वह) नही (होती हैं)।

66 (लक्ष्मी) (किसी के) कुछ गुणों को दूर हटाती है तथा (उसके लिए) दोषो को देती है, (किसी के) दोषो को) छुपाती है तथा (उसको) प्रसिद्धि देती है, लक्ष्मी की यह रचना विपरीत तुल्य देखी जाती है।

67. एक दूसरे के साथ (तुलना करने पर) लक्ष्मी (और) गुणो मे से पूरी सभावना है कि गुण ही दुष्ट हैं, लक्ष्मी नही, क्योंकि लक्ष्मी गुणो को ग्रहण करती है, किन्तु गुण लक्ष्मी को नही।

68. दुःख का अभाव सुख नही (है), जो (सासारिक) सुख (हैं), वे भी सुख नही (हैं), (सासारिक) सुखो को छोडकर जो सुख (हैं) वे ही सुख (हैं)।

69. सुख को आसक्ति की गुरुता होने पर ही दुःख अधिक उग्र होते हैं (लगते हैं), (ठीक ही है) आलोक के अत्यधिक होने पर ही छाया स्थूलता को प्राप्त करती है।

70. सुख से निवृत्ति (लिए हुए) कुछ चित्तो मे सुख की आसक्ति लगातार स्फुरित होती है, जैसे ऊँगलियो से ढके हुए कानो मे शब्द लगातार (सुनाई देते हैं)।

71. दूमिज्जताइ वि सुद्दुमुवेंति गहयाण णिमय - दुक्खेहिं ।
रस - बंधेहिं कईण व विड्ण्ण - करुणाइ हिययाइं ।।

72. अण्णण्णाइ उवेंता ससार - वहम्मि णिरवसाणम्मि ।
मण्णंति धीर - हियया वसइ - ट्ठाणाइ व कुलाइं ।

73. ससिएहिंचिय लोओ दुक्ख लहुएइ दुक्ख - जणिएहिं
आयास - कएहिं करी आयास सीअरेहिं व ।।

74 पहरिस - मिसेण बाहो जं बघु - समागमे समुत्तरइ ।
वोच्छेय - कायराइ त णूण गलंति हिययाइं ।

75. मूढ सिढिलत्तणं ते सणेह - वासेण कह णु बद्धस्स
बाढ गाढयराअइ जो इर मोत्तु तणंतस्स ।।

76 कालवसा णासमुवागयस्स सप्पुरिस - जस - सरीरस्स
अट्ठि - लवायंति कहिं पि विरल - विरला गुणग्गारा ।

71. निज दुखों से सताए जाते हुए भी महान् (व्यक्तियों) के हृदय सुख प्राप्त करते हैं, जैसे शोक (भाव) को अर्पित (महान) कवियों के (हृदय) करुण रस की सरचनाओं द्वारा (सुख प्राप्त करते हैं)।

72. अन्त रहित ससार-पथ मे और और कुटुम्बों को प्राप्त करती हुई विवेकी आत्माएँ (उन कुटुम्बों को) (किन्ही) स्थानो मे ठहरने की तरह मानती हैं।

73. दुख से उत्पन्न सांस के द्वारा ही मनुष्य (मानों) दुःख को हलका करता है, जैसे प्रयत्न से उत्पन्न वायु-प्रेरित छीटों के द्वारा हाथी थकान को (हलकी करता है)।

74. चूँकि वधुओं से सम्बन्ध होने पर आँसू हर्ष के बहाने नीचे टपकता है, तो (इस बात की) पूरी सभावना है कि (सम्बन्ध के) विनाश से भयभीत हृदय पसीजते हैं।

75. हे मूढ ! राग के बन्धन से बँधे हुए तुम्हारे लिए (उनसे) छूटना कैसे समव (है) ? चूँकि छोडने के लिए (प्रयास) करते हुए (तुम्हारे लिए) जो (बधन) बहुत ज्यादा दृढतर हो जाते हैं।

76. काल के कारण नाश को प्राप्त सत्पुरुष रूपी यश-शरीर की हड्डियाँ अल्पमात्रा में हो जाती है, (इसलिए) किसी जगह (भी) (सत्पुरुषों के विषय में) गुणों के उद्गार थोड़े-थोड़े (हो जाते हैं)।

शोकानुभूति

77. को तेसु दुग्गग्राणं गुणेसु ग्रण्णो कग्रामरो होइ ।
ग्रप्पा वि णाम णिव्वेग्र-विमुहग्र जेसु दावेइ ॥

78. हिग्रग्र यहिं पि णिसम्मसु कित्तिग्रमासाइग्रो किलिम्मिहिसि।
दीणो वि वरं एक्कस्स ण उण सग्रलाए पुहवीए ॥

79. ग्रचइउ ता विहलुद्धरणगारव कत्थ त ग्रगहएसु।
ग्रप्पाणग्रस्स वि पियं इग्ररा काउं ण पारंति ॥

80. भूरि-गुणा विरलच्चिग्र एक्क-गुणो वि हु जणो ण सव्वत्थ ।
णिद्दोसाण वि भद्दं पससिमो विरल-दोस पि ॥

81. थोवागग्र-दोसच्चिग्र ववहार-वहम्मि होंति सप्पुरिसा ।
इहरा णीसामण्णेहिं तेहिं कह संगग्र होइ ॥

77. (दुर्गुणों) व्यक्ति ही जिन दुर्गुणों मे सचमुच घृणा (और) विमुखता दिखलाता है, (ऐसे) दुर्दशाग्रस्त (व्यक्तियो के) उन (दुर्गुणों) मे दूसरा कौन (है) (जिसके द्वारा) (उनका) आदर किया हुआ होता है ?

78 हे हृदय ! किसी भी जगह पर शान्ति के निकट हो। कितने समय तक आशा से ध्वस्त हुआ (तू) खिन्न होगा ? (सच है) (स्वय) किसी एक का ही दु खी (होना) श्रेष्ठतर है, किन्तु सकल पृथ्वी का (दु खी) होना) नहीं।

79. (जब) सामान्य (व्यक्ति) स्वय के भी सुख को सम्पन्न करने के लिए समर्थ नही हैं तो दु खियो के उद्धार करने का विचार सामान्य (व्यक्तियों) द्वारा कैसे (सभव है) ? इसलिए (सामान्य व्यक्ति) चुप चाप बैठा रहे।

80 वास्तव मे (वे मनुष्य जिनमे) प्रचुर विशिष्टताएँ (हैं), अल्प (हैं), आश्चर्य ! (वह) मनुष्य (जिसमे) एक भी विशिष्टता (है) (वह) (ही) सब जगह पर नही (है) (और) निर्दोष (मनुष्यो) का (मिलना) भी सौभाग्य (है), हम (तो) अल्प दोष को (लिए हुए मनुष्य की) भी प्रशसा करते हैं।

81. (सत्पुरुषों मे) उत्पन्न (किसी) छोटे दोष के कारण ही सत्पुरुष (अन्य मनुष्यों के साथ) सम्बन्ध रखने मे (समर्थ) होते हैं, अन्यथा उन असाधारण (व्यक्तियो) के साथ सम्बन्ध कैसे (सभव) होगा ?

82 उवकारिसोच्चेअ ण जाण ताण को वा गुणाण गुण-भावा ।
सो वा पर - सुचरिअ - लक्खणेण ण गुणत्तण तह वि ॥

83. णवर दोसा तेच्चेअ जे मअस्स वि जणस्स सुब्भति ।
णज्जति जिअतस्स वि जे णवर गुणा वि तेच्चेअ ॥

84. ववहारेच्चिअ छाय णिएह लोअस्स किं व हिअएण ।
तउग्गमो मणीण वि जो बाहिं सो ण भगम्मि ॥

85. सम–गुण - दोसा दोसेक्क - दसिणो सति दोस - गुण-वामा ।
गुण - दोस - वेइणो णत्थि जे उ गेण्हति गुणमेत्त ॥

86 सच्चविआसअल • गुणं पि सज्जणं सुवुरिसा पससंति ।
पडिबध - णूमिअद्ध को वा रअण विआरेइ ॥

82 जिन गुणों के कारण (गुणी मनुष्यों का) उत्कर्ष ही नहीं (है), उन (गुणों) से कभी क्या परिणाम घटित होता (है) ? सभवत (उन गुणी मनुष्यों का) वह (उत्कर्ष) दूसरे गुणियों के द्वारा (उन गुणी मनुष्यों से भी) आगे बढने के कारण नहीं (हुआ है), तो भी (उन गुणी मनुष्यों मे) गुणपना (तो है ही)।

83 वे ही केवल दोष हैं जो मरे हुए मनुष्य के विषय म भी सुने जाते हैं, और वे ही केवल गुण हैं जो जीते हुए (मनुष्यों) के विषय मे ही कहे जाते हैं।

84 व्यवहार से ही मनुष्य के स्वाभाविक रग रूप को देखो, (उसके) हृदय से क्या ? मणियों के भी प्रकाश का उद्भव जो बाहर की ओर से (होता है), वह (उनके) टूटने पर (भीतर से) नहीं (होता है)।

85 (कुछ के लिए) गुण और दोष (दोनो) समान (होते हैं), (कुछ) केवल मात्र दोषों को देखने वाले (हैं), (कुछ) दोष और गुण (दोनो) के विरुद्ध होते हैं और (कोई भी) गुण और दोष के (ऐसे) जानने वाले नहीं हैं जो गुण मात्र को ही ग्रहण करते हैं।

86. सत्पुरुष सज्जन की प्रशंसा करते हैं, यद्यपि (उनके द्वारा) (उसका) एक (ही) गुण देखा गया (है)। (ठीक ही है) कौन (व्यक्ति) रत्न को (जो) आवरण से आधा छुपाया हुआ है, कभी टुकडे-टुकडे करता है ?

87. सोहइ भदोस - भावो गुणो व्व जइ होइ मच्छरुल्लिरणो।
विहवेसु व गुणेसु वि दूमेइ ठिश्रो श्रहकारो ।।

88 जेण गुणप्पविश्राण वि ण गारव घण - लवेण रहिमाण।
तेण विहवाण णमिमो तेणचिग्र होउ विहवेहि ।।

89. दविणोवग्रार - तुच्छा वि सज्जणा एत्तिएण धीरेंति।
ज ते णिम - गुण - लेसेहि देंति काण पि परिश्रोस ।।

90 दूमति सज्जणाण पम्हुसिग्र - दसाण तोस - कालम्मि।
दाणाग्रर - सभम - दिट्ठ - पास - सुण्णाइं विलिग्राइ ।।

91. सइ जाउर - चिताग्रद्दिग्रं व हिग्रग्रं ग्रहो मुहं जाण।
उद्धुर - चित्ता कह णाम होतु ते सुण्ण - ववसाया ।।

87. यदि (मनुष्य) ईर्ष्या से मुक्त होता है, (तो) (उसका) दोष रहित स्वभाव तथा (कोई भी) गुण शोभता है, जैसे सपत्ति के कारण हुआ अहंकार पीडा देता है, (वैसे ही) गुणो के कारण (हुआ अहकार) भी (पीडा देता है)।

88. चूँकि वैभव के कण से रहित, यद्यपि गुणो से भरे हुए (व्यक्तियो) का सम्मान नही (है), इसलिए हम वैभव को नमस्कार करते हैं, (और) (इसीलिए) (व्यक्ति) उस वैभव से ही (दूर) होवे।

89 यद्यपि सज्जन (अन्य की) सपत्ति के द्वारा (किए गए) उपकार से (स्वय) तुच्छ (अनुभव करते हैं), (तथापि) इतने से ही धीरज धरते है कि वे निज-गुणो की अल्पमात्रा के द्वारा ही किसी के लिए (तो) सतोष देते हैं।

90 सज्जनो के द्वारा भूली हुई (स्वय की निर्धनता की) अवस्था के कारण प्रसन्नता के समय मे स्नेह से भेंट देने की उत्सुकता होने पर आस-पास देखा गया खालीपन लज्जा (उत्पन्न करता है)। (यह बात) (सज्जनो को) दु खी करती है।

91 जिनका मुख नीचा है तथा हृदय सदा पेट से सबध रखने वाली चिंता से खोया हुआ है, (उनके लिए) ऊँच उद्देश्य कैसे सभव हो? (वास्तव मे) वे (लोग) (उच्च) प्रयत्न से विहीन (होते हैं)।

92. लोए अमुणिअ - सारत्तणेण खणमेत्तमुव्विअताए ।
णिअम - विवेअ-ट्ठविआ गरूआण गुणा पअट्टंति ।।

93. गेण्हउ विहवं अवणेउ णाम लीलावहे वय-विलासे ।
दूमेइ कह णु देव्वो गुए - परिउट्ठाइं हिअआइं ।।

94. अघडिअ ~ परावलवा जह जह गरुअत्तणेण विहडंति ।
तह तह गरुआण हवंति बद्ध-मूलाओ कित्ताओ ।।

95. असलाहणे खलुञ्चिअ अलिअ - पसंसाए दुज्जणो विउणं ।
अपवत्त - गुणे सुअणो दुहा वि पिसुणत्तणं लहइ ।।

96. तण्हा अखंडिअच्चिअ विहवे अच्चुण्णए वि लहिऊण ।
सेल पि समारुहिऊण किं व गअणस्स आरुढ ।।

92 (मनुष्यो के द्वारा) (महापुरुषो के गुणों के) नही जाने गए सार के कारण क्षण भर के लिए खिन्न होते हुए महापुरुषो के द्वारा निज विवेक से (जो) गुण लोक मे स्थापित किए गए (हैं) (उनके विकास के लिए ही) (वे) चलते जाते हैं।

93 दैव यद्यपि सपत्ति को छीन ले (तथा) ग्रानन्द के वाहक खर्च की मौजो को लेले, तो भी वह गुणों से तुष्ट हृदयो को पीडा कैसे दे सकता है ?

94 महापुरुषो के द्वारा दूसरे (व्यक्ति) सहारे नही बनाए गए हैं, जैसे जैसे (वे) (मनुष्यो द्वारा) (किए गए) सम्मान से अलग होते हैं, वैसे-वैसे (उनकी) कीर्ति (गहरी) जड पकडे हुए होती है।

95 (किसी के द्वारा) अयोग्य (व्यक्ति) की प्रशसा (करने) के कारण वह (अयोग्य) दुर्जन व्यक्ति (अपनी) झूँठी प्रशसा से सचमुच ही दुगनी दुष्टता को प्राप्त करता है, (इसी प्रकार) (किसी के द्वारा) शुभ कार्य में सलग्न न होने पर (भी) (उसकी) झूँठी प्रशसा के द्वारा सज्जन भी दो प्रकार से (अर्थात् झूँठ बोलने और चापलूसी करने से) दुष्टता को (प्राप्त करता है)।

96 आश्चर्य ! (सपत्ति की) बहुत ऊँची (स्थितियो) को प्राप्त करके सपत्ति मे भी तृष्णा नहीं मिटाई गई (है), तो पर्वत पर चढ कर क्या गगन पर चढना है ?

97. जम्मि अविसण्ण-हिअअत्तणेण ते गारवं वलग्गति ।
त विसममणुप्पेंतो गरुआए विही खलो होइ ।।

98. रमइ विहवी विसेसे थिइ-मेत्तं थोअ-वित्थरो महइ ।
मग्गइ सरीरमघणो रोई जीएच्चिअ कअत्थो ।।

99 विरसाअता बहलत्तणेण हिअए खलंति परिओहा ।
थोअ-विहवत्तणेण सुहभरप्पच्चिअ सुणति ।।

100. विरसम्मि वि पडिलग्गं ण तरिज्जइ कह वि ज णिवत्तेउ ।
हिअअस्स तस्स तरलत्तणम्मि मोहो इह जणस्स ।।

97 अपवित्र हृदयता से जिस (कठिन स्थिति) को (महापुरुष) ग्रहण करते हैं, (उससे) वे महत्व को प्राप्त करते हैं, (किन्तु) उस कठिन स्थिति को महापुरुषो से दूर नही हटाता हुआ विधि दुष्ट होता है।

98 धनाड्य प्रचुर (भोगो) मे क्रीडा करता है थोडा विस्तार युक्त (व्यक्ति) स्थिरता मात्र को चाहता है, निर्धन (स्वस्थ) देह को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है (तथा) रोगी जीने मे ही इच्छुक (होता है)।

99 (धनाढ्य के लिए) (जो) भोग-(वस्तुएँ) (उनकी) अत्यधिकता के कारण निरस (स्थिति) को प्राप्त करती हुई (हैं), (वे) हृदय मे डगमगा जाती हैं, (किन्तु) थोडी वैभवता के कारण व्यक्ति सुखी ही (हाते हैं)। (इस बात पर सभी) ध्यान देते हैं।

100. नीरस (वस्तु) मे भी लगा हुआ जो (हृदय) (उससे) हट जाने के लिए कैसे भी समर्थ नही किया जाता है, उस हृदय की इस चचलता मे मनुष्य का मिथ्या विश्वास (ही) (प्रतीत होता है)।

संकेत-सूची

(अ) —अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)
अक —अकर्मक क्रिया
अनि —अनियमित
आज्ञा —आज्ञा
कर्म —कर्मवाच्य

(क्रिविअ) —क्रिया विशेषण अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)

गुवि —गुणवाचक विशेषण
पु॰ —पुल्लिंग
प्रे —प्रेरणार्थक क्रिया
भकृ —भविष्य कृदन्त
भवि —भविष्यत्काल
भाव —भाववाच्य
भू —भूतकाल
भूकृ —भूतकालिक कृदन्त
व —वर्तमानकाल
वकृ —वर्तमान कृदन्त
वि —विशेषण
विधि —विधि
विधिकृ —विधि कृदन्त
स —सर्वनाम
संकृ —सम्बन्ध कृदन्त
सक —सकर्मक क्रिया
सवि —सर्वनाम विशेषण
स्त्री —स्त्रीलिंग
हेकृ —हेत्वर्थ कृदन्त
( ) —इस प्रकार के कोष्टक में मूल शब्द रखा गया है।
[( ) + ( ) + ( ) ....] इस प्रकार के कोष्टक के अन्दर + चिह्न किन्हीं शब्दों में संधि का द्योतक है। यहाँ अन्दर के कोष्टकों में गाथा के शब्द ही रख दिए गए हैं।

[( ) — ( ) — ( ) ····] इस प्रकार के कोष्टक के अन्दर '—' चिन्ह समास का द्योतक है।

* जहां कोष्टक के बाहर केवल संख्या (जैसे 1/1, 2/1 आदि) ही लिखी है वहां उस कोष्टक के अन्दर का शब्द 'संज्ञा' है।

* जहां कर्मवाच्य, कृदन्त आदि प्राकृत के नियमानुसार नही बने हैं वहां कोष्टक के बाहर 'अनि' भी लिखा गया है।

1/1 अक या सक—उत्तम पुरुष/एकवचन
1/2 अक या सक—उत्तम पुरुष/बहुवचन
2/1 अक या सक—मध्यम पुरुष/एक वचन
2/2 अक या सक—मध्यम पुरुष/बहुवचन
3/1 अक या सक—अन्य पुरुष/एकवचन
3/2 अक या सक—अन्य पुरुष/बहुवचन

1/1—प्रथमा/एकवचन
1/2—प्रथमा/बहुवचन
2/1—द्वितीया/एकवचन
2/2—द्वितीया/बहुवचन
3/1—तृतीया/एकवचन
3/2—तृतीया/बहुवचन
4/1—चतुर्थी/एकवचन
4/2—चतुर्थी/बहुवचन
5/1—पंचमी/एकवचन
5/2—पंचमी/बहुवचन
6/1—षष्ठी/एकवचन
6/2—षष्ठी/बहु वचन
7/1—सप्तमी/एकवचन
7/2—सप्तमी/बहुवचन
8/1—संबोधन/एकवचन
8/2—संबोधन/बहुवचन

व्याकरणिक विश्लेषण

1 इह (अ) = इस लोक में ते (त) 1/2 सवि जअ ति (जअ) व 3/2 अक कइणो (कइ) 1/2 जअमिणमो [(जअ) + (इणमो)] जअ (जअ) 1/1 इणमो(इम) 1/1 सवि जाण (ज) 6/1 सवि सअल-परिणाम [(सअल) वि-(परिणाम) 1/1] वाआसु (वाआ) 7/2 ठिअ (ठिअ) भूकृ 1/1 अनि दीसइ(दीसइ) व कर्म 3/1 सक अनि आमोअ-धण[(आमोअ)-(धण) 1/1 वि] च (अ)=या तुच्छं (तुच्छ) 1/1 वि व (अ)=या

2 णिअआए (णिअअ→णिअआ) 3/1 वि च्चिअ (अ) = ही वाआए (वाआ) 3/1 अत्तणो (अत्ताण) 6/1 गारव (गारव)2/1 णिवेसता (णिवेस) वकृ 1/2 जे (ज) 1/2 सवि ए ति (ए) व 3/2 सक पसस (पससा) 2/1 च्चिअ (अ) – निश्चय ही जअ ति (जअ) व 3/2 अक इह (अ) – इस लोक मे ते (त) 1/2 सवि महा-कइणो [(महा)वि-(कइ) 1/2]

3 दोगच्चम्मि (दोगच्च) 7/1 वि (अ) = भी सोक्खाइं (सोक्ख) 1/2 ताण (त) 6/2 सवि विहवे (विहव) 7/1 होंति (हो)व 3/2 अक दुक्खाई (दुक्ख) 1/2 कव्व परमत्थ-रसिआइं [(कव्व) (परमत्थ) (रसिअ)1/2 वि]जाण (ज) 6/1 सवि जाअ ति (जाअ) व 3/2 अक हिअआइ (हिअअ) 1/2

4 सोहेइ (सोह) व 3/1 अक सुहावेइ (सुहाव) व 3/1 सक अ (अ) = तथा उवहुज्जतो (उवहुज्जतो) कर्म वकृ 1/1 अनि लवो (लव) 1/1 वि (अ) = भी लच्छीए (लच्छी)6/1 देवी(देवी)1/1 सरस्सई (सरस्सई) 1/1उण (अ) – किन्तु असमग्गा (अ-समग्ग→अ-समग्गा) 1/1 वि किंपि (अ) – किंचित् विणडेइ (विणड) व 3/1 सक

5 लग्गिहिइ (लग्ग) भवि 3/1 सक ण (अ) – नहीं वा (अ) – अथवा सुअणे (सुअण) 2/2 वयणिज्ज (वयणिज्ज) 1/1 दुज्जणेहिं (दुज्जण) 3/2

भण्णात (भण्णात) कर्म वकृ 1/1 अनि ताण (त) 6/2 सवि पुण (अ) = किन्तु त (त) 1/1 सुअणाववाअ-दोसेण [(सुअण)+ (अववाअ)+ (दोस)] [(सुअण) (अववाअ) (दोस) 3/1] सघडइ (सघड) व 3/1 अक

6 पर-गुण-परिहार-परपराए [(पर) – गुण)-(परिहार)-,परपरा) 3/1] तह (अ) = उसी प्रकार ते (त) 1/2 सवि गुणण्णुआ (गुणण्णु) स्वार्थिक 'अ' 1/2 वि जाआ (जा) भूकृ 1/2 तेहिं (त) 3/2 सवि चिअ अ) ही जह (अ) – जिस प्रकार गुणेहिँ (गुण) 3/2 गुणिणो (गुणि) 1/2 वि पर (अ) = अत्यन्त विगुणा (विगुण) 1/2

7 ज (अ) = चूँकि णिम्मला (णिम्मल) 1/2 वि वि (अ) – भी खिज्जति (खिज्ज व 3/2 अक हृत अ) = खेद विमलेहिँ (विमल) 3/2 वि सज्जणगुणेहिं [(सज्जण)-(गुण) 3/2] त (अ) = इसलिए सरिस (सरिस) 1/1 ससि-अर-कारणाए [(ससि)-(अर)-(कारण) 6/1] करि-दत-विअणाए [(करि)-(दत)-(विअण) 3/1]

8 जाए (ज) 4/1 स असमेहिँ (अ सम) 3/2 वि विहिआ (विहिआ) भूकृ 1/1 अनि जाअइ (जाअ) व 3/1 अक णिदा (णिदा) 1/1 समा[a] (समा) 1/1 वि सलाहा (सलाहा) 1/1 वि (अ = भी तेहिँ (त) 3/2 सवि ण (अ) – नही ताण (त) 6/2 मण्णे[d] (मण्ण) 7/1 किलामेइ (किलाम) व 3/1 सक

[a] समा – के समान (सम → समा)

[d] कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-135)

9 बहुओ (बहुअ) 1/1 वि सामण्ण-महत्ताणेण [(सामण्ण)-(महत्तण) 3/1] ताए (त) 6/1 सवि परिग्गहे (परिग्गह) 7/1 लोओ (लोअ) 1/1 काम (अ) = प्रसन्नतापूर्वक गआ (गअ) भूकृ 1/2 अनि पसिद्धि

(पमिद्धि) 2/1 सामण्ण-कई [(सामण्ण) वि (कइ) 1/2] अग्रो (अ) = इसलिए च्चेअ (अ) = ही

10. हरइ (हर) व 3/1 सक अणू (अणु) 1/1 वि वि (अ)=भी पर-गुणो [(पर) वि-(गुण) 1/1] गरुअम्मि (गरुअ) 7/1 वि (अ) = भी णिअ-गुणे [(णिअ) वि-(गुण) 7/1] ण (अ) = नही सतोसो (सतोस) 1/1 सीलस्स (सील) 6/1 विवेअस्स (विवेअ) 6/1 अ (अ)=और सारमिणं [(सार)+(इणं)] सार (सार) 1/1 इणं (इम) 1/1 सवि एत्तिअ (एत्तिअ) 1/1 वि चेअ (अ)=ही

11. इअरे (इअर) 7/1 वि वि (अ)=भी फुरति (फुर) व 3/2 अक गुणा (गुण) 1/2 गुरूण (गुरु) 6/2 पढम (अ) सर्व प्रथम कउत्तमासगा [(कअ)+(उत्तम)+(ऊसंगा)] [(कअ) भूकृ अनि - (उत्तम) वि - (असग) 1/2] अग्गे (अ) = पहले सेलग्ग-गआ [(सेल +(अग्ग) + (गआ)] [(सेल)-(अग्ग)-(गअ) भूकृ अनि 1/2] इदु मऊहा [(इदु)-(मऊह) 1/2] इव (अ) = जैसे महीए (मही) 7/1

12 णिव्वाडताण (णिव्वड) प्रेरक वकृ 4/2 सिव (सिव) 2/1 सअल (सअल) 1/1 वि च्चिअ (अ) = ही सिवअर (सिवअर)1/1 वि तहा (अ) = इस प्रकार ताण (त) 4/2 स णिव्वडइ (णिव्वड) व 3/1 अक किं पि (अ)=कुछ जह (अ)=जिससे ते (त) 1/2 स वि (अ) = भी अप्पणा (अ)=स्वय विम्हअमुवेंति [(विम्हअं)+(उवेंति)] विम्हअ (विम्हअ) 2/1 उवेंति (उवे) व 3/2 सक

13. पासम्मि (पास) 7/1 अहकारो (अहंकारी) 1/1 होहिइ (हो) भवि 3/1 अक कह (अ)=कैसे वा (अ)=सभावना गुणाण (गुण) 6/2 विवरक्खे (विवरक्ख) 7/1 गव्वं (गव्व) 2/1 ण (त) 1/1 स गुणि-गअ-मओ [(गुणि)-(गअ) भूकृ अनि-(मअ) 1/1] गुणत्थमिच्छंति [(गुण)+(त्थ)+(इच्छति)] गुणत्थ (गुणत्थ) 2/1 वि इच्छति

(इच्छ) व 3/2 सक गुण कामा [(गुण)-(काम)1/2 वि]

14 मोह-सलाहाहिं [(मोह) वि-(सलाहा) 3/2] तहा (अ)=इस प्रकार पहुणो (पहु) 1/2 विगुणेहिं (विगुण) 3/2 वेलविज्जति (वेलव) व कर्म 3/2 सक जह (अ)=कि णिव्वडिएसु (णिव्वड) भूकृ 7/2 वि (अ)=ही णिअ-गुणेसु [(णिअ) वि-(गुण) 7/2] ते (त) 2/2 स किं पि (अ)=बहुत अशो तक चिंतेंति (चिंत) व 3/2 सक

15 सुलह (सुलह) 1/1 वि हि (अ)=ही गुणाहारण [(गुण)+(आहारण] [(गुण) (आहारण) 1/1] सगुणाहाराण [(सगुण)+(आहाराण)] [(सगुण) वि-(आहार)] 4/2 णूण (अ)=अवश्य णरिंदाण (णरिंद) 4/2 अण्णेसिअव्व-मग्गा [(अण्णेस) विधि कृ-(मग्ग) 1/2] कत्तो (अ)=कहाँ स वि (अ)=सभावना गुणा (गुण) 1/2 दरिद्दाण (दरिद्द) 4/2 वि

16 त (त) 1/1 सवि खलु (अ)=वास्तव मे, सिरीए (सिरी)6/1 रहस्स (रहस्स) 1/1 ज (अ)=कि सुचरिअ-मग्गणेक्क-हिअओ [(सुचरिअ)+(मग्गण)+(एक्क)+(हिअओ)] [(सुचरिअ) वि-(मग्गण)-(एक्क) वि-(हिअअ) 1/1] वि (अ)=यद्यपि अप्पाणमोसरत [(अप्पाण)+(ओसरत)] अप्पाण (अप्पाण) 2/1 ओसरत (ओसर) वकृ 2/1 गुणेहिं[x] (गुण) 3/2 लोओ (लोअ)1/1 ण (अ)=नही लक्खेइ (लक्ख) व 3/1 सक

[x] कभी कभी पचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-136)

17 लोएहिं (लोअ) 3/2 अगहिअ (अ-गह) भूकृ 1/1 चिअ (अ)=बिल्कुल सीलमविहव-ट्ठिअ [(सील)+(अविहवट्ठिअ)] सील (सील) 1/1

ग्रविहव-ट्ठिग्र [(ग्रविहव)-(ट्ठिग्र) 1/1 वि] पसण्ण (पसण्ण) 1/1 वि पि (ग्र)=भी सोसमुवेइ [(सोस) +(उवेइ)] सोस (सोस) 2/1उवेइ (उवे) व 3/1 सक तहि (ग्र)=उस ग्रवस्था मे च्चिग्र (ग्र)=ही कुसुम (कुसुम) 1/1 व (ग्र)=की तरह फलग्ग-पडिलग्ग [(फल)+(ग्रग्ग) + (पडिलग्ग)] [(फल)-(ग्रग्ग) (पडिलग्ग) 1/1 वि]

18 णिच्च (ग्र) = सदैव धण-दार-रहस्स-रक्खणे [(धण)—(दार)—(रहस्स)—(रक्खण) 7/1] सकिणो (सकि) 1/2 वि वि (ग्र) = यद्यपि ग्रच्छरिग्र (ग्रच्छरिग्र) 1/1 ग्रासण्ण-एोग्र-वग्गा [(ग्रासण्ण)—(एोग्र) वि-(वग्ग) 1/2] ज (ग्र)=कि तहवि (ग्र) = तथापि एराहिवा (एराहिव) 1/2 हो त (हो) व 3/2

19 पेच्छह (पेच्छ) विधि 2/2 सक विवरीग्रमिम [(विवरीग्र + (इम)] विवरीग्र (विवरीग्र) 2/1 वि इम (इम) 2/1 सवि बहुग्रा (बहुग्रा) 1/1 वि मइरा (मइरा) 1/1 मएइ (मए) व 3/1 सक ए (ग्र) = नहीं हु (ग्र) = किन्तु थोवा (थोवा) 1/1 वि लच्छी (लच्छी) 1/1 उए (ग्र) = पर थोवा (थोवा) 1/1 वि जह (ग्र)= जैसी तहा (ग्र)=वैसी दूर (ग्र)=निस्सादेह बहुग्रा (बहुग्रा) 1/1 वि

20 जे (ज) 1/2 स णिव्वडिग्र—गुणा [(णिव्वडिग्र) वि—(गुण) 1/2] वि (ग्र)=भी हु (ग्र)=ग्राश्चर्य सिरि (सिरी) 2/1 गग्रा (गग्र) भूकृ 1/2 ग्रनि ते (त) 1/2 स वि (ग्र)=ही णिग्गुणा (णिग्गुण) 1/2 वि होंति (हो) व 3/2 ग्रक उण (ग्र) = फिर गुणाण[x] (गुण) 6/2 दूरे (क्रिविग्र)=दूर ग्रगुण (ग्रगुण) 1/2 वि ग्रागे सयुक्त ग्रक्षर (च्चिग्र) के ग्राने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुग्रा है। च्चिग्र (ग्र)=ही जे (ज) 1/2स लच्छि (लच्छी) 2/1

[x] दूरवाची शब्दो के साथ पचमी ग्रथवा षष्ठी होती है।

21 एक्के (एक्क) 1/2 सवि लहुग्रसहावा [(लहुग्र) वि – (सहाव) 1/2] गुणेहिं (गुण) 3/2 लहिउ[x] (लह) हेकृ महति[x] (मह) व 3/2 सक धण–रिद्धि [(धण)—(रिद्धि) 2/1] अण्णे (अण्ण) 1/2 सवि विसुद्ध चरिश्रा [(विसुद्ध) वि—(चरिश्र) 1/2] विहवाहि (विहव) 3/2 गुणे (गुण) 2/2 विमग्गति (विमग्ग) व 3/2 सक

[x] 'इच्छा' अर्थ की क्रियाओ के साथ हेत्वर्थ कृदन्त का प्रयोग होता है।

22. परिवार दुज्जणाइं [(परिवार)—(दुज्जण) 1/2 वि] पट्ठु-पिसुणाइ [(पट्ठ)–(पिसुण) 1/2 वि] पि (अ) = तथा होंति (हो) व 3/2 अक गेहाइं (गेह) 1/2 उहश्र खलाइ [(उहश्र) वि—(खल) 1/2 वि] तह (अ) = इस प्रकार च्चिश्र (अ) = ही कमेण (क्रिविअ) = क्रम से विसमाइ (विसम) 1/2 वि। मण्णेरया[x] (मण्ण) व 2/2 सक।

[x] यहाँ विधि अर्थ मे वर्तमान का प्रयोग है।

23. मुद्दे[x] (मुद्द) 7/1 जणम्मि[x] (जण) 7/1 अ-मुणिअ-गुण-सार विवेअ-वइअरुव्विग्गा [(अ-मुणिअ+(गुण)+(सार)+(विवेअ)+(वइ-अर)+(उव्विग्ग)] [(अ-मुणिअ) भूकृ—(गुण)—(सार)—(विवेअ)—(वइअर)—(उव्विग्ग) 1/2 वि] किं (किं) 2/1 सवि अण्ण (अण्ण) 2/1 वि सप्पुरिसा (सप्पुरिस 1/2 गामाश्रो (गाम) 5/1 वण (वण) 2/1 पवज्जति (पवज्ज) व 3/2 सक

[x] कभी-कभी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग तृतीया के स्थान पर किया जाता है। [हेम प्राकृत व्याकरण : 3–135]

24. दुक्खेहिं (दुक्ख) 3/2 दोहिं (दो) 3/2 सुग्रणा (सुग्रण) 1/2 अहिऊरिज्जंति (अहिऊर) व कर्म 3/2 सक दिअसिमं (त्रिविम)–

प्रतिदिन चेश्र (ग्र) = ही सुपुरिस-काले [(सुपुरिस) – (काल) 7/1] श्र (ग्र) = एक श्रोर ण (ग्र) = नहीं जं (ग्र) = कि जं (ग्र) = कि जाश्रा (जा) भूकृ 1/2 णीश्र-काले [(णीश्र)—(काल) 7/1] श्र (ग्र) = दूसरी श्रोर।

25 सुमईण (सुमइ) 4/2 वि सुचरिश्राण (सुचरिश्र) 4/2 वि श्र (ग्र) = तथा देंता (दा) वकृ 1/2 श्रालोश्रण (श्रालोश्रण) 2/1 पसग (पसग) 2/1 च (ग्र) = एव पहुणो (पहु) 1/2 ज (ज) 1/1 णिश्रश्र फल [(णिश्रश्र) वि–(फल) 1/1] त (त) 1/1 ताण (त) 4/2 स फल (फल) 1/1 ति (ग्र) = इस प्रकार मण्णति (मण्ण) व 3/2 सक

26. श्रण्णो (श्रण्ण) 1/1 वि वि श्र) = भी णाम (ग्र) = वास्तव मे विहवी (विहवि) 1/1 वि सुहाइ (सुह) 2/2 लीलासहाइ (लीला)–(सह) 2/2 वि] णिव्विसइ (णिव्विस) व 3/1 सक श्रसमजस-करणेच्चेश्र [(श्रसमजस)–करण) 7/1] च्चेश्र (ग्र) = ही णवर (ग्र) = केवल णिव्वडइ (णिव्वड) व 3/1 श्रक पहुभावो [(पहु) वि–(भाव) 1/1]

27 श्रदोलताण (श्र दोल) वकृ 6/2 खण (क्रिविश्र) = एक क्षण मे गश्रश्राण (गश्र) 6/2 श्रणाश्ररे[x] (श्रणाश्रर) 7/1 पहु कश्रम्मि[x]] (पहु)—(कश्र) भूकृ 7/1 श्रनि] हिश्रश्र (हिश्रश्र) 1/1 खल बहुमाणावलोश्रणे [(खल) + (बहुमाण) + (श्रवलोश्रण)] [(खल)—[illegible]माण)—(श्रवलोश्रण) 7/1] णवर (ग्र) = केवल णिव्वाइ (णि[illegible]

[x] कभी कभी [illegible] स्थान पर सप्तमी [illegible]
पाया जाता है [illegible] . 3—13

28. [illegible]] गुणिणो ([illegible]
(ग्र) [illegible] के ([illegible]

वि (अ)=के आदि के साथ जोड दिया जाता है। सावआस (स–अवमास) 1/2 वि आगे मतुक्त अक्षर (व्व) के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुआ है। व्व (अ)=थोडी जण सामण्ण [(जण)—(सामण्ण) 1/1] त (त) 1/1 सवि ताण (त) 4/2 स किंपि (अ)=कुछ अण्ण (अण्ण) 1/1 वि चिअ (अ)=ही णिमित्त (णिमित्त) 1/1

वच्चति (वच्च) व 3/2 सक वेस भाव [(वेस)—(भाव) 2/1] जेहिं (ज) 3/2 सवि चिअ (अ)=ही सज्जणा (सज्जण) 1/2 णरिंदाण (णरिंद) 6/2 तेहिं (त) 3/2 स बहुमाण (बहुमाण) 2/1 गुणेहिं (गुण) 3/2 किं (अ)=क्यो णाम (अ)=मैं जानना चाहूं गा। मग्गति (मग्ग) व 3/2 सक

को (क) 1/1 स व्व (अ)='को' आदि के साथ जोड दिया जाता है। ण (अ)=नहीं परमुहो (परमुह) 1/1 वि णिग्गुणाण (णि-गुण) 6/2 वि गुणिणो (गुणि) 1/2 वि क (क) 2/1 स व (अ)='क' आदि के साथ जोड दिया जाता है। दूमेंति (दूम) व 3/2 सक जो (ज) 1/1 स वा (अ)=या गुणी (गुणि) 1/1 वि वा (अ)=या णिग्गुणो (णि–गुण) 1/1 वि सो (त) 1/1 स सुह (क्रिविअ)=सुख पूर्वक जिअइ (जिअ) व 3/1 अक

ज (ज) 1/1 स सुअणेसु[x] (सुअण) 7/2 णिअत्तइ (णिअत्त) व 3/1 अक पहूण (पहु) 6/2 पडिवत्ति णीसह [(पडिवत्ति)—(णीसह) 1/1 वि] हिअअ (हिअय) 1/1 त (अ)=तो खु (अ)=वास्तव में इम (इम) 1/1 सवि रअणाहरण-मोअण [(रअण)+(आहरण)+(मोअण)]

[(रमरण)—(आहरण)—(मोमरण) 1/1] गारव-भएण [(गारव)—(भम) 3/1]

* कभी कभी पचमी विभक्ति के स्थान सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। [हेम प्राकृत व्याकरण 3—136]

32. अविवेअ-सकिणोच्चेअ [(अविवेअ)—(सकि) 1/2 वि] च्चेअ (अ)=ही णिग्गुणा (णि-ग्गुण) 1/2 वि पर-गुणे [(पर) वि-(गुण) 2/2] पसंसति (पसस) व 3/2 सक लद्ध-गुणा [(लद्ध) भूकृ अनि—(गुण) 1/2] उण (अ)=परन्तु पहुणो (पहु) 1/2 बाढ (अ)=बहुत ज्यादा वामा (वाम) 1/2 वि पर-गुणेसु[(पर) वि—(गुण) 7/2]

33 सव्वो (सव्व) 1/1 वि च्चिअ (अ)=ही स-गुणुक्करिस लालसो [(स) + (गुण) + (उक्करिस) + (लालसो)] [(स) वि—(गुण) —(उक्करिस)—(लालस) 1/1 वि] वहइ (वह) व 3/1 सक मच्छरुच्छाहं [(मच्छर) + (उच्छाहं)] [(मच्छर) वि—(उच्छाह) 2/1] ते (त) 1/2 वि पिसुणा (पिसुण) 1/2 जे (ज) 1/2 स ण (अ)=नही सहंति (सह) व 3/2 सक णिग्गुणा (णिग्गुण) 1/2 वि पर गुणुग्गारे [(पर)+(गुण)+(उग्गारे)] [(पर)—(गुण)—(उग्गार) 2/2]

34. सुअणत्तणेण (सुअणत्तण) 3/1 घेप्पइ (घेप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि थोएण (थोअ) 3/1 वि चिअ (अ)=ही परो (पर) 1/1 वि सुचरिएण (सुचरिअ) 3/1 दुक्ख-परिओसिअव्वो [(दुक्ख)—(परिओस) विधि कृ 1/1] अप्पाणो (अप्पाण) 1/1 च्चेअ (अ)=ही लोअस्स (लोअ) 6/1.

35. मोत्तुं (मोत्तु) हेकृ अनि गुणावलेवो [(गुण)+(अवलेवो)] [(गुण)-(अवलेव) 1/1] तीरइ (तीर) व 3/1 अक कह णु (अ) = कैसे विणय-ट्ठिएहिं [(विणय)-ट्ठिअ) भूकृ 3/2 अनि] पि (अ) - भी मुक्कम्मि (मुक्क) भूकृ 7/1 अनि जम्मि (ज) 7/1 स सो (त) 1/1 सवि च्चिअ (अ)=ही विउणअरं (त्रिविअ) = दुगने से भी अधिक रूप से फुरइ (फुर) व 3/1 अक हिअअम्मि (हिअअ) 7/1

36 दूमिज्जंता (दूम) कर्म वकृ 1/2 हिअएण[x] (हिअअ) 3/1 किंपि (अ) - कुछ चिंतेंति (चिंत) व 3/2 सक जइ (अ) = यदि ण (अ) = नहीं जाणामि (जाण) व 1/1 सक किरियासु (किरिया) 7/2 पुण (अ) = किन्तु पअट्टंति (पअट्ट) व 3/2 अक सज्जणा (सज्जण) 1/2 णावरद्धे [(ण)+(अवरद्धे)] ण (अ) = नहीं अवरद्धे (अवरद्ध) 7/1 वि (अ) = भी

[x] कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

37 महिमं (महिम) 2/1 दोसाण (दोस) 4/2 गुणा (गुण) 1/2 दोसा (दोस) 1/2 वि (अ) = तथा हु (अ) = भी देंति (दा) व 3/2 सक गुण-णिहाअस्स [(गुण)-(णिहाअ) 4/2] दोसाण (दोस) 6/2 जे (ज) 1/2 सवि गुणा (गुण) 1/2 ते (त) 1/2 स गुणाण (गुण) 6/2 जइ (अ) - यदि ता (अ) - तो णमो (अ) = नमस्कार ताण (त) 4/2 स

38. ससेविऊणं (स-सेव) संकृ दोसे (दोस) 2/2 अप्पा (अप्प) 1/1

तीरइ (तीर) व 3/1 अक गुण ट्ठिओ [(गुण)-(ट्ठिअ) मूळ 1/1 अनि] काउ (काउं) हेक्क अनि णिव्वडिअ-गुणाण [(णिवडिअ) वि-(गुण) 6/2] पुणो (अ)=किन्तु दोसेसु (दोस) 7/2 मई (मइ) 1/1 ण (अ)=नहीं सठाइ (सठा) व 3/1 अक

39 अह (अ)=वास्तव मे मोहो (मोह) 1/1 पर गुण लहुअआए [(पर)-(गुण)-(लहुअआ) 3/1] ज (अ)=कि किर (अ)= जैसा कि लोग कहते हैं गुणा (गुण) 1/2 पयट्ट ति (पयट्ट) व 3/2 अक अप्पाण गारवचिअ [(अप्पाण)-(गारव) 1/1] चिअ (अ)=ही गुणाण (गुण) 6/2 गरुअत्तण णिमित्त [(गरुअत्तण) (णिमित्त) 1/1]

40 वुव्भते (वुव्भते) व कर्म 3/2 सक अनि जम्मि (ज) 7/1 सवि गुणुण्णआ [(गुण)+(उण्णआ)] [(गुण)-(उण्णआ)] 1/2 वि] वि (अ)-भी लहुअत्तण (लहुअत्तण) 2/1 व (अ)= मानो पावेंति (पाव) व 3/2 सक कह (अ)=कैसे णाम (अ)= यथार्थ मे णिग्गुण (णिग्गुण) 1/2 आगे सयुक्त अक्षर (च्चिअ) के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व हुआ है। च्चिअ (अ)=भी त (त) 2/1 सवि वहति[x] (वह) व 3/2 सक माहप्प (माहप्प) 2/1

[x] प्रश्नवाचक शब्दो के साथ वर्तमान का प्रयोग भविष्यत् काल के अर्थ में हो जाया करता हैं।

41 माहप्पे (माहप्प) 7/1 गुण कज्जम्मि [(गुण)-(कज्ज) 7/1]

प्रगुण-कज्जे[a] [(प्र गुण)-(कज्ज) 7/1] णिबद्ध-माहप्प [(णिबद्ध) मूकृ अनि-(माहप्प) 1/2] विवरीअं (विवरीअ) 2/1 वि उप्पत्ति (उप्पत्ति) 2/1 गुणाण[d] (गुण) 6/2 इच्छंति (इच्छ) व 3/2 सक काउरिसा (काउरिस) 1/2

[a] कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–135)

[d] कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पंचमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–134)

42. गुण-संभवो [(गुण)-(संभव) 1/1] मओ (मअ) 1/1 सुपुरिसाण (सु-पुरिस) 6/2 संकमइ (संकम) व 3/1 सक णेअ (अ)–कभी नहीं हिअअम्मि (हिअअ) 7/1 तेण (अ)–इस तरह अणिव्वूढ-मअ[x] [(अ-णिव्वूढ) मूकृ अनि-(मअ) 5/1 आगे संयुक्त अक्षर व्व के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व हुआ है] व्व (अ)–भी ताण (त) 6/2 सवि गरुआ (गरुअ) 1/2 वि गुणा (गुण) 1/2 होंति (हो) व 3/2 अक

[x] किसी कार्य का कारण बतलाने के लिए संज्ञा शब्द में तृतीया या पंचमी का प्रयोग किया जाता है।

43. ता (अ)–तब तक चेअ (अ)–ही मच्छर-मलं [(मच्छर)-(मल) 1/1] जाव (अ)–जब तक विवेओ (विवेअ) 1/1 फुडं (अ)–स्पष्ट रूप से ण (अ)–नहीं विप्फुरइ (विप्फुर) व 3/1 अक जलिअं (जल) मूकृ 1/1 च (अ)–एक ओर अअवआ (अअवआ) 3/1 अनि हुअवहेण (हुअवह) 3/1 धूमो (धूम) 1/1 अ (अ)–दूसरी ओर विणिअत्तो (विणिअत्त) मूकृ 1/1 अनि

44 गुण्णो (गुरिण) 1/2 वि विहयारूढाण [(विहव) + (आरूढाण)] [(विहव)-(आरूढ) 4/2 वि] विहविणो (विहवि) 1/2 वि गुरु गुणाण* [(गुरु)-(गुण) 6/2] ण (अ)=नहीं हु (अ)= आश्चर्य किंपि (अ)=कुछ लहुअन्ति (लहुअ) व 3/2 सक य (अ)=जैसे अण्णोण्ण (अ)=आपस मे गिरीण (गिरि) 6/2 जे (ज) 1/2 स मूल सिहरेसु [(मूल)-(सिहर) 7/2]

* कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सप्तमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3 134)

45 जह (अ) = जैसे, जह (अ) = जैसे णग्घंति [(ण) + (अग्घति)] ण (अ)=नहीं अग्घंति* (अग्घ) व 3/2 अक गुणा (गुण) 1/2 दोसा (दोस) 1/2 अ (अ)=तथा सपइ (अ)=इस समय फलंति* (फल) व 3/2 अक अगुणाअरेण [(अगुण) + (आअरेण)] [(अगुण)-(आअर) 3/1] तह (अ)=वैसे तह (अ)=वैसे गुण सुण्ण [(गुण)-(सुण्ण) 1/1] होहिइ (हो) भवि 3/1 अक जम्म (जम्म) 1/1 पि (अ)=भी

* कभी कभी वर्तमान काल तात्कालिक भविष्यत् काल का बोध कराता है।

46 कि (कि) 1/1 सवि व (अ)=भी णरिंदेहिं (णरिंद) 3/2 विवेअ मुक्क समलाहिलास णीसंगा [(विवेअ) + (मुक्क) + (समल) + (अहिलास) + (णीसगा)] [(विवेअ)-(मुक्क) भूकृ अनि (समल) वि-(अहिलास)-(णीसग) 1/2 वि] विहिणो (विहि) (

वि (म)=भी धीर पडिबद्ध परिग्गरा[d] [(धीर)-(पडिबद्ध) भूकृ अनि-(परिग्गर) 5/1] होंति (हो) व 3/2 अक सप्पुरिसा (सप्पुरिस) 1/2

[d] किसी कार्य का कारण बतलाने के लिए संज्ञा शब्द मे तृतीया या पचमी का प्रयोग किया जाता है।

[a] कभी कभी षष्ठी का प्रयोग तृतीया के स्थान पर भी होता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

47. विण्णाणालोग्रोच्चिग्र [(विण्णाण)+(ग्रालोग्रो)+(च्चिग्र)] [(विण्णाण)-(ग्रालोग्र) 1/1] च्चिग्र (ग्र)=ही कुमईण (कुमइ) 6/2 विसारग्रं (वि-सारग्रा) 2/1 पग्रासेइ (पग्रास) व 3/1 सक कसणाण (कसण) 6/2 वि मणीणं (मणि) 6/2 पिव (ग्र)= जैसे तेग्र-प्फुरण [(तेग्र)-(प्फुरण) 1/1] तिग्र (तिग्र) 1/1 वि

48 हिग्रग्र विग्रड्ढत्तणेण [(हिग्रग्र)-(विग्रड्ढत्तण) 3/1] गरुग्राण (गरुग्र) 6/2 ण (ग्र)=नहीं णिव्वडति (णिव्वड) व 3/2 ग्रक बुद्धीग्रो (बुद्धि) 1/2 धोलति (धोल) व 3/2 ग्रक महा-भवणेसु [(महा)-(भवण) 7/2] मद-किरण [(मद) वि-(किरण) 1/2 ग्रागे सयुक्त ग्रक्षर (च्चिग्र) के ग्राने से दीर्घ स्वर ह्रस्व हुग्रा है] च्चिग्र (ग्र)= ही पईवा (पईव) 5/1

49 ग्रच्चत विएएण [(ग्रच्चत) वि-(विएग्र) 3/1 वि] वि (ग्र)-ही गरुआण (गरुग्र) 6/2 वि ण ग्र)=नहीं णिव्वडति (णिव्वड) व 3/2 ग्रक सकप्पा (सकप्प) 1/2 विज्जुज्जोग्रो [(विज्जु)+

(उज्जोअो)] [(विज्जु)-(उज्जोअ) 1/1] बहलत्तणेण (बहलत्तण) 3/1 मोहेइ (मोह) व 3/1 सक मच्छोइ (मच्छी) 2/2

50 जे (ज) 1/2 स गेण्हति (गेण्ह) व 3/2 सक सय (अ) = स्वयं चिअ (अ) = ही लच्छि (लच्छी) 2/1 ण (अ) – नहीं हु (अ) = वास्तव में ते (त) 1/2 स गारव ट्ठाण [(गारव)-(ट्ठाण) 1/1] चण (अ) = किन्तु केवि* (क) 1/2 सवि = कुछ दालिद्द (दलिद्द) 1/1 घेप्पए (घेप्पए) व कर्म 3/1 सक अगि जेहि (ज) 3/2 स

* प्रश्नवाचक शब्दों के साथ जुड़ कर अनिश्चितता के अर्थ को बतलाता है ।

51 एक्के (एक्क) 1/2 सवि पावति (पाव) व 3/2 सक ण (अ) – नहीं त (ता) 2/1 स अण्णे (अण्ण) 1/2 सवि परमो (अ) = परे अव (अ) = तथा तीए (ती) 6/1 दीसति (दीसति) व कर्म 3/2 सक अनि इअराण (इअर) 6/2 वि महग्घाण (महग्घ) 6/2 वि च (अ) – तथा अतरे (अतर) 7/1 णिवसइ (णिवस) व 3/1 अक पसत्ता (पसत्ता) 1/1

52 मरणमहिणदमाणाण [(मरण) + (अहिणदमाणाण)] मरण (मरण) 2/1 अहिणदमाणाण (अहिणद) वकृ 6/2 अप्पण (अप्पण) 3/1 आगे सयुक्त अक्षर (च्चेअ) के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुआ है । च्चेअ (अ)–ही मुक्क-विहवाण [(मुक्क) भूकृ अनि-(विहव) 6/2] कुणइ (कुण) व 3/1 सक कुविओ (कुविअ) 1/1 वि कअतो (कअत) 1/1 जइ (अ) = यदि विवरीअ (विवरीअ) 2/1 वि सु-पुरिसाण (सु-पुरिस) 4/2

53 उवयरणीभूग्र जग्रा [(उवग्ररणी) वि-(भूग्र) भूकृ-(जग्र * 2/2] ए (ग्र)=नहीं हु (ग्र)=ग्राश्चर्य णवर (ग्र)=केवल पाविग्रा (पाव) भूकृ 1/2 पहु द्वाणं [(पहु) वि-(द्वाण) 2/1] उवग्ररण (उवग्ररण) 2/1 पि (ग्र)=भी जाग्रा (जा) भूकृ 1/2 गुण-गुरुणो [(गुण)-(गुरु) 1/2] काल दोसेण [(काल)-(दोस) 3/1]

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-137) तथा 'जग्र' 'मानव जाति' ग्रर्थ मे बहु-वचन मे प्रयुक्त होता है।

54 विसइ (विस व 3/1 ग्रक च्चेग्र (ग्र)=ही सरहस (त्रिविग्र)= उत्सुकता से जेसु (ज) 7/2 सवि कि (कि) 1/1 स तेहि (त) 3/2 सवि खडिग्रासेहि [(खडिग्र)+(ग्रासेहि)] [(खडिग्र) वि-(ग्रास) 3/2] णिवलमइ (णिवखम) व 3/1 ग्रक जेसु (ज) 7/2 सवि परिग्रोस णिब्भरो [(परिग्रोस)-(णिब्भर)] 1/1 वि] ताइ (त) 1/2 सवि गेहाइ (गेह) 1/2

55 उज्झइ (उज्झ) व 3/1 सक उग्रार भाव [(उग्रार)-'भाव) 2/1] दक्खिण्ण (दक्खिण्ण) 2/1 करणग्र (करण) 2/1 'ग्र' स्वार्थिक प्रत्यय च (ग्र)=ग्रौर ग्रामुग्रइ (ग्रामुग्र) व 3/1 सक काण (क) 4/2 वि (ग्र)-भी समोसरतो (समोसर) वकृ 1/1 छिप्पइ (छिप्पइ) व कर्म 3/1 ग्रनि पुहवी (पुहवी) 1/1 वि (ग्र)=भी पावेहि (पाव) 3/2

56 ग्रतो (ग्र)-ग्रांतरिक रूप से च्चिग्र (ग्र)-ही णिहुग्र (ग्र) - चुपचाप विहसिऊण (विहस) सकृ ग्रच्छति (ग्रच्छ) व 3/2 ग्रक विग्गिग्रा

(विरिहम) 1/2 वि ताहे (अ) = तब इअर-सुलह [(इअर) वि-(सुलह) 1/1 वि] पि (अ) = भी जाहे (अ) – जब गरुआण (गरुअ) 4/2 वि ण (अ) – नहीं किंपि (अ) = थोड़ी सी सपडइ (सपड) व 3/1 अक

57 दावेंति (दाव) व 3/2 सक सज्जणाणˣ (सज्जण) 6/2 इच्छा गरुअ [(इच्छा)-(गरुअ) 2/1 वि] परिग्गह (परिग्गह) 2/1 गरुआ (गरुअ) 1/2 वि मअण-विणिवेस-दिट्ठ [(मअण)-(विणिवेस)-(दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि] मह-मणीण [(मह)-(मणि) 6/2] व (अ) = जैसे पडिबिंब (पडिबिंब) 1/1

ˣ कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग द्वितीया विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)

58 साहीण-सज्जणा [(साहीण) वि-(सज्जण) 1/2] वि (अ) – ही हु (अ) – आश्चर्य णीअ पसंगे [(णीअ) वि-(पसंग) 7/1] रमति (रम) व 3/2 अक काउरिसा (काउरिस) 1/2 सा (ता) 1/1 स इर (अ) – निश्चय ही लीला (लीला) 1/1 ज (अ) = कि काम धारण [(काम)-(धारण) 1/1] सुलह-रमणाण [(सुलह) वि-(रमण)ˣ 6/2]

ˣ कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सप्तमी के स्थान पर होता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)

59 थाम त्थाम-णिवेसिअ-सिरीणˣ [थाम)-(त्थाम)-(णिवेसिअ) भूकृ-(सिरी) 6/2] गरुआण (गरुअ) 4/2 कह (अ) – कैसे णु (अ) = सभावना दालिद्द (दालिद्द) 1/1 एक्का (एक्का) 1/1 वि उण

(म) = किन्तु किविण-सिरी [(किविण)-(सिरी) 1/1] गम्रा (गम्रा) भूकृ 1/1 म्रनि म्र (म्र) – यदि मूलं (मूल) 1/1 च (म्र) – ही पम्हुसिम्रं (पम्हुस) भूकृ 1/1

60 किविणाण (किविण) 6/2 म्रण्ण-विसए [(म्रण्ण) वि-(विसम्र) 7/1] दाण-गुणे [(दाण)-(गुण) 2/2] म्रहिसलाहमाणाण (म्रहिसलाह) वकृ 6/2 णिम्र-चाए [(णिम्र) वि-(चाम्र) 7/1] उच्छाहो (उच्छाह) 1/1 ण (म्र) = नहीं णाम (म्र) म्राश्चर्य कह (म्र) – कैसे वा (म्र) – म्रौर लज्जा (लज्जा) 1/1 वि (म्र) = भी

61. परमत्थ-पाविम्र-गुणा [(परमत्थ)–(पाविम्र) भूकृ-(गुण) 1/2] गरुम्रं (गरुम्रा) 2/1 वि पि (म्र) = भी हु (म्र) – चूंकि पलहुम्रं (पलहुम्र) 1/1 वि व (म्र) – की तरह मण्णंति (मण्ण) व 3/2 सक तेण (म्र) = इसलिए सिरीए (सिरी) 6/1 विरोहो (विरोह) 1/1 गुणेहिं (गुण) 3/2 म्रिवकारण (क्रिविम्र) – बिना कारण ण (म्र) – नहीं उण (म्र) – वास्तव मे

  * 'परमत्थ' का प्रयोग समास पद मे 'वास्तविक' म्रर्थ प्रकट करता है।

62. भुमम्रा-भंगाणत्ता [(भुमम्रा) + (भंग) + (म्राणत्ता)] [(भुमम्रा)-(भंग)-(म्राणत्ता) 1/1 वि] वि (म्र) – भी सुवुरिसं (सुवुरिस) 2/1 जं (म्र) = चूंकि ण (म्र) = नहीं तुरिम्रमल्लिम्रइ [(तुरिम्रं) + (मल्लिम्रइ)] तुरिम्रं (म्र) – शीघ्रता से मल्लिम्रइ (मल्लिम्र) व 3/1 सक तं (म्र) = उस कारण से भण्णे (म्र) – विमर्श सूचक

ग्रव्यय धावंती (धाव) वकृ 1/1 रहसेण (त्रिविग्र) = वेग से सिरी (सिरी) 1/1 परिक्खलइ (परिक्खल) व 3/1 ग्रक
* गत्यार्थक त्रियाग्रों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

63. णणु (ग्र)=निस्सदेह णासमणवलबा [(णास) + (ग्रणवलबा)] णास (णास) 2/1 ग्रणवलबा (ग्रण-ग्रवलबा) 1/1 वि एइ (ए) व 3/1 सक च्चिग्र (ग्र) – बिल्कुल सा (ता) 1/1 स वि (ग्र) – भी सुवुरिसाभावे [(सुवुरिस) + (ग्रभावे)] [(सुवुरिस)–(ग्रभाव) 7/1] देव्व-वसा [(देव्व)–(वसा) त्रिविग्र = के कारण] तेण (त) 3/1 स सिरीए (सिरी) 6/1 होइ (हो) व 3/1 ग्रक णासमिग्रो [(णा) + (ग्रासमिग्रो)] णा (ग्र) – नहीं ग्रासमिग्रो (ग्रासमिग्र) 1/1 वि विरहो (विरह) 1/1

64. धम्म-पसूग्रा [(धम्म)–(पसूग्र) 1/1 वि] कह (ग्र) = कैसे होउ (हो) विधि 3/1 ग्रक भग्रवई (भग्रवई) 1/1 वेस सज्जणा [(वेस)–(सज्जण) 5/1] लच्छी (लच्छी) 1/1 ताग्रो (ता) 1/2 सवि ग्रलच्छिग्रो (ग्रलच्छि) 1/2 च्चिग्र (ग्र) = ही लच्छि-णिहा [(लच्छि)–(णिहा) 1/2 वि] जा (जा) 1/2 सवि ग्रणज्जेसु (ग्रणज्ज) 7/2 वि

65 जा (जा) 1/2 सवि विउला (विउला) 1/2 जाग्रो (जा) 1/2 सवि चिर (ग्र) = दीर्घ काल तक जा (जा) 1/2 सवि परिहोउज्जलाग्रो [(परिहोग्र) + (उज्जलाग्रो)] [(परिहोग्र)–(उज्जला) 1/2 वि] लच्छीओ (लच्छी) 1/2 ग्राग्रारधराण

(ग्राग्रारघर) 6/2 वि चिग्र (ग्र) = ही ताग्रो (ता) 1/2 सवि ण (ग्र) = नहीं उणो (अ) = निश्चय ही ग्र (ग्र) = किन्तु इग्रराण (इग्रर) 6/2 वि

66. ग्रवणेइ (ग्रवणी) व 3/1 सक देइ (दा) व 3/1 सक ग्र (ग्र) = तथा गुणे (गुण) 2/2 दोसे (दोस) 2/2 णूमेइ (णूम) व 3/1 सक पग्रासं (पग्रास) 2/1 दीसइ (दीसइ) व कर्म 3/1 सक ग्रति एस (एत) 1/1 सवि विरुद्धो (विरुद्ध) 1/1 वि व्व (ग्र) = तुल्य को वि* (क) 1/1 सवि = कुछ लच्छीए (लच्छी) 6/1 विण्णासो (विण्णास) 1/1

* प्रश्नवाचक शब्दों के साथ जुडकर ग्रनिश्चितता के ग्रर्थ को बतलाता है।

67. ग्रण्णोण्णं (ग्र) = एक दूसरे के साथ लच्छिगुणाण* [(लच्छि)-(गुण) 6/2] णूण (ग्र) = पूरी सभावना है कि पिसुणा (पिसुण) 1/2 वि गुण (गुण) 1/2 ग्रागे संयुक्त ग्रक्षर (च्चिग्र) के ग्राने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुग्रा है। च्चिग्र (ग्र) = ही ण (ग्र) = नहीं लच्छी (लच्छी) 1/1 ग्रहिलेइ (ग्रहि-ले) व 3/1 सक गुणे (गुण) 2/2 लच्छि (लच्छी) 2/1 उणो (ग्र) = किन्तु गुणा (गण) 1/2 जेण (ग्र) = क्योंकि

* जिस समुदाय मे से एक को छाँटा जाता है उस समुदाय में षष्ठी ग्रथवा सप्तमी विभक्ति होती है।

68. दुक्खाभावो [(दुक्ख)+(ग्रभावो)] [(दुक्ख)-(ग्रभाव) 1/1] ण

सोकानुभूति

(अ)—नहीं सुहं (सुह) 1/1 ताइं त) 1/2 सवि वि (अ)=भी सुहाइं (सुह) 1/2 जाइं (ज) 1/2 सवि सोक्खाइं (सोक्ख) 1/2 मोत्तूण (मोत्तूण) सक अनि सुहाइं (सुह) 2/2 सुहाइ (सुह) 1/2 जाइ (ज) 1/2 सवि ताइ (त) 1/2 सवि च्चिअ (अ)=ही सुहाइं (सुह) 1/2

69. सुह-संग-गारवे [(सुह)-(संग)-(गारव) 7/1] च्चिअ (अ)=ही हवंति (हव) व 3/2 अक दुक्खाइं (दुक्ख) 1/2 दारुणअराइं (दारुण-अर) 1/2 तुवि आलोउक्करिसे [(आलोअ)+(उक्करिसे)] [(आलोअ)-(उक्करिस) 7/1 वि] च्छाया (च्छाया) 1/1 बहलत्तणमुवेइ [(बहलत्तण)+(उवेइ)] बहलत्तण (बहलत्तण) 2/1 उवेइ (उवे) व 3/1 सक

70. सुह-संगो [(सुह)-(संग) 1/1] सुह विणिवत्तिएक्क-चित्ताण* [(सुह)-(विणिवत्ति)-(एक्क)] वि-(चित्त) 6/2] अविरअ (अ)=लगातार फुरइ (फुर) व 3/1 अक अंगुलि-पिहिआण* [(अगुलि)-(पिहिअ) 6/2] रवो (रव) 1/1 अव्वोच्छिण्णो (अव्वोच्छिण्ण) 1/1 वि व्व (अ)—जैसे कण्णाण* (कण्ण) 6/2

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

71. दूमिज्जंताइ (दूम) कर्म वकृ 1/2 वि (अ)—भी सुहमुवेंति [(सुह)+(उवेंति)] सुह (सुह) 2/1 उवेंति (उवे) व 3/2 सक गरुआण (गरुअ) 6/2 वि णिअअ-दुक्खेहिं [(णिअअ) वि-(दुक्ख) 3/2] रस वहेहिं [(रस)-(वध) 3/2] कईण (कइ) 6/2 व (अ)=जैसे

विइण्ण करणाइं [(विइण्ण) भूक्र अनि-(करण) 2/2] हिअआइं (हिअअ) 1/2

72. अण्णण्णाइं (अण्णण्ण) 2/2 वि उवेंता (उवे) वकृ 1/2 संसार-वहम्मि [(संसार)-(वह) 7/1] णिरवसाणम्मि (णिरवसाण) 7/1 वि मण्णंति (मण्ण) व 3/2 सक धीर-हिअआ [(धीर) वि-(हिअअ) 1/2] वसइ-ट्ठाणाइं [(वसइ)-(ट्ठाण) 1/2] व (अ)= की तरह कुलाइं (कुल) 2/2

73 ससिएहिं (ससिअ) 3/2 चिअ (अ)=ही लोओ (लोअ) 1/1 दुक्खं (दुक्ख) 2/1 लहुएइ (लहुअ) व 3/1 सक दुक्ख-जणिएहिं [(दुक्ख)-(जण) भूक्र 3/2] आयास-कएहिं [(आयास)-(कअ) भूक्र 3/2 अनि] करी (करि) 1/1 आयासं (आयास) 2/1 सीअरेहिं (सीअर) 3/2 व (अ)=जैसे

74. पहरिस-मिसेण [(पहरिस)-(मिस) 3/1] वाहो (वाह) 1/1 जं (अ)=चूँकि बंधु-समागमे [(बंधु)-(समागम) 7/1] समुत्तरइ (समुत्तर) व 3/1 अक वोच्छेअ-कायराइं [(वोच्छेअ)-(कायर) 1/2 वि] तं (अ)=तो णूण (अ)=पूरी संभावना है कि गलंति (गल) व 3/2 अक हिअआइं (हिअअ) 1/2

75. मूढ (मूढ) 8/1 वि सिढिलत्तण (सिढिलत्तण) 1/1 ते (तुम्ह) 4/1 सणेह-वासेण [(सणेह)-(वास) 3/1] कह (अ)=कैसे णु (अ)= संभावना बद्धस्स (बद्ध) भूक्र 4/1 अनि बाढ (अ)=बहुत ज्यादा गाढअराअइ [(गाढअर)+(आअइ)] [(गाढअर) तुवि-(आ)ˣ

व 3/1 सक] जो (ज) 1/1 सवि इर (अ) – चूँकि मोत्तुं (मोत्तु)
हेत्कृ अनि तणतसस (तण) वक् 4/1

* अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से 'अ' जोड़ने के पश्चात् प्रत्यय जोड़ा जाता है।

6 कालवसा [(काल)-(वस) द्विविध–के कारण] णासमुवागअस्स [(णास)+(उवागअस्स)] णास (णास) 2/1 उवागअस्स (उवागअ) 6/1 सप्पुरिस-जस सरीरस्स [(सप्पुरिस)-(जस)-(सरीर) 6/1] अट्ठि-लवाअति [(अट्ठि)+(लव)+(आअति)] [(अट्ठि)-(लव) वि-(आ)* व 3/2 अक] कहिँपि (अ)-किसी जगह विरल-विरला [(विरल)-(विरल) 1/2 वि] गुणुग्गारा [(गुण)+(उग्गारा)] [(गुण)-(उग्गार) 1/2]

* गाथा 75 देखें।

77 को (क) 1/1 सवि तेसु (त) 7/2 सवि दुग्गआए (दुग्गअ) भूकृ 6/2 अनि गुणेसु (गुण) 7/2 अण्णो (अण्ण) 1/1 सवि कआअरो [(कअ)+(आअरो)] [(कअ) भूकृ अनि-(आअर) 1/1] होइ (हो) व 3/1 अक अप्पा (अप्प) 1/1 वि (अ)–ही णाम (अ)= सचमुच णिव्वेअ-विमुहआ [(णि॰वेअ)-(विमुहआ) 2/1] जेसु (ज) 7/2 सवि दावेइ (दाव) व 3/1 सक

78 हिअअ (हिअअ) 8/1 कहिँ (अ)=किसी जगह पर वि (अ)=भी णिसम्मसु (णि सम्म) विधि 2/1 अक कित्तिअमासाहओ [(कित्तिअ)+(आसा)+(हओ)] कित्तिअ (अ)=कितने समय तक [(आसा)-(हअ) भूकृ 1/1 अनि] किलिम्मिहिसि (किलिम्म) भवि

2/1 अक दीणो (दीण) 1/1 वि वि (अ) = ही वर (अ) = श्रेष्ठतर
एक्करस (एक्क) 6/1 वि ण (अ) = नही उण (अ) = किन्तु सअलाए
(सअल → सअला) 6/1 वि पुहवीए (पुहवी) 6/1

79 अच्छउ (अच्छ) विधि 3/1 अक ता (अ) = तो विहलुद्धरणगारव
[(विहल) + (उद्धरण) + (गारव)] [(विहल) वि-(उद्धरण)-
(गारव) 1/1] कत्थ (अ) = कैसे त (अ) = इसलिए अगहएसु
(अगहअ) 7/2 वि अप्पाणअस्स (अप्पाण) 6/1 स्वार्थिक 'अ
प्रत्यय वि (अ) = भी पिय (पिय) 2/1 इअरा (इअर) 1/2 वि
काउ (काउ) हेकृ अनि ण (अ) = नही पारति (पार) व 3/2 अक
* कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का
प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-135)

80 भूरि गुणा [(भूरि)-(गुण) 1/2] विरल (विरल) 1/2 वि आग
संयुक्त अक्षर (च्चिअ) के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुआ है
च्चिअ (अ) = वास्तव मे एक्क गुणो [(एक्क) वि-(गुण) 1/1
वि (अ) = भी हु (अ) = आश्चर्य जणो (जण) 1/1 ण (अ) = नह
सव्वत्थ (अ) = सब जगह पर णिद्दोसाण (णिद्दोस) 6/2 वि f
(अ) = भी भद्द (भद्द) 1/1 पससिमो (पसस) व 2/2 स
विरल दोस [(विरल) वि-(दोस) 2/1] वि (अ) = भी

81 थोवागम दोसच्चिअ [(थोव) + (आगम) + (दोस) + (च्चिअ)
[(थोव) वि-(आगम) वि-(दोस)[a] 5/1 आगे संयुक्त अक्षर (च्चिअ
के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुआ है] च्चिअ (अ) = ह

ववहार वहम्मि [(ववहार)-(वह) 7/1] होंति (हो) व 3/2 अक सप्पुरिसा (सप्पुरिस) 1/2 इहरा (अ)–अन्यथा लोसामण्णेहि (लीसामण्ण) 3/2 वि तेहि (त) 3/2 सवि कह (अ)=कैसे सगम्र (सगम्र) 1/1 होइ[d] (हो) व 3/1 अक

[d] प्रश्नवाचक शब्दों के साथ वर्तमान काल का प्रयोग भविष्यत् काल के अर्थ में हो जाता है।

[a] किसी कार्य का कारण बतलाने के लिए सज्ञा शब्द में तृतीया या पचमी का प्रयोग किया जाता है।

82 उवकरिसो (उक्करिस) 1/1 च्चेअ (अ)=ही ण (अ)–नहीं ताण[x] (ज) 6/2 मवि ताण[x] (त) 6/2 सवि को (क) 1/1 सवि वा[a] (अ)=कभी गुणाण[x] (गुण) 6/2 गुण भावो [(गुण)-(भाव) 1/1] सो (त) 1/1 सवि वा (अ)=सभवत पर-सुचरिम लघणेण [(पर) वि-(सुचरिम) वि-(लघण) 3/1] ण (अ) = नही गुणत्तण (गुणत्तण) 1/1 सह वि (अ)=तो भी

[x] कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3–134)

[a] सभावना अर्थ में 'वा' प्रश्नवाचक सर्वनाम के साथ जोड दिया जाता है।

83 णवर (अ) = केवल दोसा (दोस) 1/2 ते (त) 1/2 सवि च्चेअ (अ) = ही जे (ज) 1/2 सवि मग्गस्स[x] (मग्ग) भूकृ 6/1 अनि वि (अ)=भी जणस्स[x] (जण) 6/1 सुव्वति (सुव्वति) व कर्म 3/2 सक अनि णज्जति (णज्जति) व कर्म 3/2 सक अनि जिअतस्स[x]

(जिग्र) वङ्क 6/1 वि (ग्र)=ही जे (ज) 1/2 सवि एावर (ग्र)= केवल गुणा (गुण) 1/2 वि (ग्र)=ग्रौर ते (त) 1/2 सवि च्चेग्र (ग्र)=ही

[x] कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–134)

84 ववहारे[x] (ववहार) 7/1 च्चिग्र (ग्र) – ही छायं (छाया) 2/1 णिएह (णिग्र) विधि 2/2 सक लोग्रस्स (लोग्र) 6/1 किंव (ग्र) – क्या हिग्रएण (हिग्रग्र) 3/1 तेउग्गमो [(तेग्र)+(उग्गमो)] [(तेग्र)-(उग्गम) 1/1] मणीण (मणि) 6/2 वि (ग्र)=भी जो (ज) 1/1 स बाहिं (ग्र)=बाहर की ग्रोर से सो (त) 1/1 स ण (ग्र)=नहीं भंगम्मि (भंग) 7/1

[x] कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–135)

85 सम गुण-दोसा [(सम) वि–(गुण)–(दोस) 1/2] दोसेक्क-दंसिणो [(दोस)+(एक्क)+(दंसिणो)] [(दोस)–(एक्क) वि–(दंसि) 1/2 वि] संति (ग्रस) व 3/2 ग्रक दोस-गुण-वामा [(दोस)–(गुण)–(वाम) 1/2 वि] गुण-दोस-वेइणो [(गुण)–(दोस)–(वेइ) 1/2 वि] णत्थि (ग्र) – नहीं जे (ज) 1/2 सवि उ (ग्र) = ग्रौर गेण्हंति (गेण्ह) व 3/2 सक गुणमेत्तं [(गुण)–(मेत्त) 2/1]

86. सच्चविग्रासमल-गुणं [(सच्चविग्र) + (ग्रसमल) + (गुणं)] [(सच्चविग्र) भूकृ–(ग्रसमल) वि–(गुण) 1/1] पि (ग्र) = यद्यपि

सज्जए (सज्जए) 2/1 सुवुरिसा (सुपुरिस) 1/2 पसतति (पसत)
व 3/2 सक पडिवघ एूमिमद्द [(पडिवघ)+(णू मम)+(मद्द)]
[(पडिवघ) (एूमिम) भूइ-(मद्द) 2/1] को (क) 1/1 सवि
वा (म)=कभी रमण (रमए) 2/1 विमारेइ (विमार) व
3/1 सक

87 सोहइ (सोह) व 3/1 मक मदोस भावो [(मदोस) वि-(भाव)
1/1] गुणो (गुण) 1/1 इव (म)-तया जइ (म)-यदि होइ
(हो) व 3/1 मक मच्छरुत्तिण्णो [(मच्छर)+(उत्तिण्णो)]
[(मच्छर)-(उत्तिण्ण 1/1 वि] विहवेसु[x] (विहव) 7/2 व
(म)=जैसे गुणेसु[x] (गुण) 7/2 वि (म)=भी ठूमेइ (ठूम) व
3/1 सक ठिम्रो ठिम्र) 1,1 वि अहकारो (म्रहकार) 1/1

[x] कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का
प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-135)

88 जेण (म)=क्योंकि गुणगवविम्राण [(गुए)+(म्रगवविम्राए)]
[(गुए)-(म्रगवविम्र) 6/2 वि] वि (म)=यद्यपि ण (म)=नहीं
गारव (गारव) 1/1 धण लवेण [(घण) (लव) 3/1] रहिम्राण
(रह) भूकृ 6/2 तेण (म)=इसलिए विहवाण[a] (विहव) 4/2
णमिमो[a] (णम) व 1/2 सक तेए[d] (त) 3/1 सवि चिम्र (म)-
ही होउ (हो) व 3/1 मक विहवेहिं[d] (विहव) 3/2

[a] नमस्कार' के योग मे चतुर्थी विभक्ति होती है।

[d] कभी कभी पचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयाग
पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-136)

89 दविणोवग्रार तुच्छा [(दविण)+(उवग्रार)+(तुच्छा)] [(दविण)-(उवग्रार)-(तुच्छ) 1/2 वि] वि (अ)=यद्यपि सज्जणा (सज्जण) 1/2 एत्तिएण (एतिग्र) 3/1 वि धीरेंति (धीर) व 3/2 ग्रक ण (ग्र)=कि ते (त) 1/2 स णिग्र गुण लेसेहिं [(णिग्र) वि-(गुण)-(लेस) 3/2] देंति (दा) व 3/2 सक काण (क) 4/2 सवि पि (ग्र)=ही परिग्रोस (परिग्रोस) 2/1

90 दूमंति (दूम) व 3/2 सक सज्जणाण* (सज्जण) 6/2 पम्हुसिग्र वसाण* [(पम्हुसिग्र) भूकृ (दसा) 6/2] तोस कालम्मि [(तोस)-(काल) 7/1] दाणाग्रर सभम दिट्ठ पास सुण्णाइ [(दाण)+(ग्राग्रर)+(सभम)+(दिट्ठ)+(पास)+(सुण्णाइ)] [(दाण)-(ग्राग्रर)-(सभम)-(दिट्ठ) भूकृ ग्रनि-(पास)-(सुण्ण) 1/2] विलिग्राइ (विलिग्र) 1/2

* कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)

91 सइ (ग्र)=सदा जाढर चिंताग्रडिढग्र [(जाढर) वि-(चिंता)-(ग्रडिढग्र) 1/1 वि] व (ग्र)=तथा हिग्रग्र (हिग्रग्र) 1/1 ग्रहो (ग्र)=नीचे मुह (मुह) 1/1 जाण (ज) 6/2 सवि उद्धुर चित्ता [(उद्धर) वि-(चित्त) 1/2] कह (ग्र)=कैसे णाम (ग्र)= समावना होतु (हो) विधि 3/2 ग्रक ते (त) 7/2 सवि सुण्ण ववसाया [(सुण्ण) वि-(ववसाय) 5/1]

92 लोए (लोग) 7/1 ग्रमुणिग्र सारत्तणण [(ग्रमुणिग्र) भूकृ (सारत्तण) 3/1] खणमेत्तमुव्विग्रताण* [(खणमेत्त)+

(उब्बिग्रताए)] खणमेत्तं (क्रिविग्र)=क्षण भर के लिए उव्विग्रताए* (उव्विग्र) वक्र 6/2 विग्रम्र विवेग्र-ठुविग्रा [(णिग्रम्र) वि-(विवेग्र)-(ठुव) भूकृ 1/2] गरुग्राण* (गरुग्र) 6/2 गुणा (गुण) 1/2 पहुट्ट ति (पग्रट्ट) व 3/2 ग्रक

* कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)

93. गेण्हउ (गेण्ह) विधि 3/1 सक विहव (विहव) 2/1 ग्रवणेउ (ग्रवणी) विधि 3/1 सक णाम (ग्र)=यद्यपि लीलावहे (लीलावह) 2/2 वि वय-विलासे [(वय)-(विलास) 2/2] दूमेइ* (दूम) व 3/1 सक कह (ग्र)=कैसे ण (ग्र)=तो भी देव्वो (देव्व) 1/1 गुण परिउट्ठाइ [(गुण)-(परिउट्ठ) 2/2 वि] हिग्रग्राई (हिग्रग्र) 2/2

* कभी कभी वर्तमान काल का प्रयोग विधि ग्रर्थ में किया जाता है।

94. ग्रघडिग्र परावलवा [(ग्रघडिग्र)+(पर)+(ग्रवलबा)] [(ग्रघडिग्र) भूकृ-(पर) वि-(ग्रवलब) 1/2] जह (ग्र)=जैसे जह (ग्र)= जैसे गरुग्रत्तणेण (गरुग्रत्तण) 3/1 विहडति (विहड) व 3/2 ग्रक तह (ग्र)=वैसे तह (ग्र)=वैसे गरुग्राण* (गरुग्र) 6/2 वि हवति (हव) व 3/2 ग्रक बद्ध मूलाग्रो (बद्धमूल→बद्धमूला) 1/2 वि कित्तीग्रो (कित्ति) 1/2

* कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-134)

95. ग्रसलाहणे* (ग्र-सलाहण) 7/1 खलु (ग्र)=सचमुच च्चिग्र (ग्र)=ही ग्रलिग्र पससाए [(ग्रलिग्र) वि-(पससा) 3/2] दुज्जणो

(दुज्जण) 1 1 विउण (विउण) 2/1 वि अपवत्त गुणे [(अपवत्त) भूकृ अनि-(गुण) 7/1] सुअणो (सुअण) 1/1 दुहा (अ) = दो प्रकार से वि (अ) - भी विसुणत्तणं (विसुणत्तण) 2/1 लहइ (लह) व 3/1 सक

96 तण्हा (तण्हा) 1/1 अखडिअ (अखडिअ) 1/1 वि आगे संयुक्त अक्षर (च्चिअ) के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुआ है। च्चिअ (अ) = भी विहवे (विहव) 7/1 अच्चुण्णए (अच्चुण्णअ) 2/2 वि वि (अ) = आश्चर्य लहिऊण (लह) सक्र सेल[a] (सेल) 2/1 वि (अ) - भी समारुहिऊण[a] (समारुह) सक्र किं (अ) - क्या गअणस्स[d] (गअण) 6/1 आरूढ (आरूढ) 1/1

[a] गति अर्थ के योग मे द्वितीया विभक्ति होती है।

[d] कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)

97 जम्मि[a] (ज) 7/1 सवि अविसण्ण हिअअत्तणेण [(अविसण्ण)-(हिअअत्तण) 3/1] ते (त) 1/2 सवि गारव (गारव) 2/1 वलग्गति (वलग्ग) व 3/2 सक त (त) 2/1 सवि विसमअणुप्पेंतो [(विसम)+(अणुप्पेंतो)] (विसम) 2/1 अणुप्पेंतो (अणुप्पेंत) 1/1 वि णरअाण[d] (णरअ) 6/2 विही (विहि) 1/1 खलो (खल) 1/1 होइ (हो) व 3/1 अक

[a] कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-135)

[d] कभी कभी पचमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)

98 रमइ (रम) व 3/1 अक विहवी (विहवि) 1/1 वि विसेसे (विसेस) 7/1 वि पिइ मेत्तं [(पिइ)-(मेत्त) 2/1] थोम वित्यरो [(थोम) वि-(वित्यर) 1/1 वि] महइ (मह) व 3/1 सक मग्गइ (मग्ग) व 3/1 सक सरीरमयणो [(सरीरं)+(मयणो)] सरीरं (सरीर) 2/1 मयणो (मयण) 1/1 वि रोई (रोइ) 1/1 वि लोए (लोम) 7/1 च्चिम (म)—ही कमत्थो [(कम)+(मत्थो] कमत्थो (कमत्थ) 1/1 वि

99 विरसाम्रता [(विरस)+(मम्रता)] [(विरस) वि-(म्रम) वइ 1/2] बहुलत्तणेण (बहुलत्तण) 3/1 हिमए (हिमम) 7/1 खलंति (खल) व 3/2 अक परिमोहा (परिमोह) 1/2 थोम-विहवत्तणेणं [(थोम) वि-(विहवत्तण) 3/1] सुहभरप्प [(सुहभर)+(मप्प)] [(सुहभर) वि-'मप्प) 1/2 आगे सयुक्त अक्षर (च्चिम) के माने से दीर्घ स्वर हृस्व स्वर हुमा है।] सुणंति (सुण) व 3/2 सक

100. विरसम्मि (विरस) 7/1 वि वि (म)—भी पढिलग्गं (पढिलग्ग) 1/1 वि ण (म)—नहीं तरिज्जइ (तर) व कर्म 3/1 सक कह (म)—कैसे वि (म)=भी ज (ज) 1/1 सवि णिवत्तेउं (णिवत्त) हेकृ हिम्रमस्स (हिमम) 6/1 तस्स (त) 6/1 सवि तरलत्तणम्मि (तरलत्तण) 7/1 मोहो (मोह) 1/1 इह (इम) 7/1 सवि जणस्स (जण) 6/1

वाक्पतिराज की लोकानुभूति एवं गउडवहो का गाथानुक्रम

क्रम	गउडवहो गाथाक्रम	क्रम	गउडवहो गाथाक्रम
1	62	26	874
2	63	27	875
3	64	28	876
4	68	29	877
5	70	30	878
6	71	31	879
7	72	32	880
8	73	33	881
9	75	34	882
10	76	35	883
11	77	36	884
12	78	37	885
13	79	38	887
14	858	39	892
15	859	40	893
16	860	41	894
17	862	42	895
18	863	43	996
19	864	44	900
20	865	45	902
21	866	46	903
22	867	47	905
23	871	48	906
24	872	49	907
25	873	50	908

1. गउडवहो : वाक्पतिराज (सम्पादक : प्रोफेसर—नरहर गोविन्द सुरु)
(प्राकृत ग्रंथ परिषद्, अहमदाबाद)

क्रम	गउडवहो गाथाक्रम	क्रम	गउडवहो गाथाक्रम
51	909	76	945
52	910	77	952
53	911	78	954
54	913	79	955
55	914	80	958
56	915	81	960
57	916	82	961
58	917	83	962
59	918	84	963
60	919	85	964
61	922	86	967
62	923	87	968
63	924	88	969
64	925	89	970
65	926	90	971
66	927	91	972
67	930	92	974
68	935	93	975
69	936	94	976
70	937	95	979
71	938	96	983
72	939	97	989
73	940	98	991
74	941	99	993
75	942	100	994

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	गाथा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
8	23	1	जणम्मि	जणम्मि
14	35	1	ट्ठिएहि	ट्ठिएहि
16	44	1	विहवारुड्डाए	विहवारुढाए
18	48	2	घालति	घोलति
22	64	2	अणज्जेम	अणज्जेसु
24	65	1	परिहोइज्जलाओ	परिहोउज्जलाओ
30	82	1	गुणभावा	गुणभावो
	84	2	सेउग्गमो	सेउग्गमो
	84	2	भगम्मि	मगम्मि
31	92	2	गहमाए	गहमाए
40	3	4	(अ) 6/1	(अ) 6/2
41	8	1	(अ) 4/1	(अ) 4/2
41	9	2	(न) 6/1	(त) 6/2
47	31	2	(पहू)	(पहु)
		3	वास्तव ये	वास्तव में
48	33	3	(मानस)	(मानस)
49	37	3	(णिहाय) 4/2	(णिहाय) 4/1
		5	= ती	= तो
50	40	2	(उग्गम) 1/2 .	(उग्गम) 1/2
54	50	4	(हविर)	(छविर)
58	62	1	बाव	बाव
68	92	4	पहट्टंमि	पहट्टंमि

सहायक पुस्तकें एवं कोश

1. गउडवहो वाक्पतिराज : (संपादक : प्रोफेसर नरहर गोविंद सुरु) (प्राकृत ग्रंथ परिषद, अहमदाबाद)
2. हेम प्राकृत व्याकरण भाग 1-2 : व्याख्याता श्री प्यारचन्दजी महाराज (श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, मेवाडी बाजार, ब्यावर राजस्थान)
3. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : डा० आर० पिशल (बिहार-राष्ट्र भाषा-परिषद्, पटना)
4. अभिनव प्राकृत व्याकरण : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री (तारा पब्लिकेशन वाराणसी)
5. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री (तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)
6. प्राकृतमार्गोपदेशिका : प० बेचरदास जीवराज दोशी (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)
7. संस्कृत निबन्ध-दर्शिका : वामन शिवराम आप्टे (रामनारायण बेनीमाधव, इलाहाबाद)
8. प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी : डा० कपिलदेव द्विवेदी (विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी)
9. पाइअ-सद्द-महण्णवो : पं० हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ (प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी)
10. संस्कृत हिन्दी कोश : वामन शिवराम आप्टे (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)
11. Sanskrta-English Dictionary : M. Monier Williams (Munshiram Manoharlal, New Delhi)
12. बृहत् हिन्दी कोश : सम्पादक : कालिका प्रसाद आदि (ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस)

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर

—: प्रद्यावधि प्रकाशित ग्रंथ :—

1. कल्पसूत्र सचित्र	(मूल, हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद तथा 36 बहुरंगी चित्रों सहित) सम्पादक एव हिन्दी अनुवादक : महोपाध्याय विनयसागर, अंग्रेजी अनुवादक : डा० मुकुन्द लाठ	200.00 अप्राप्य
2. राजस्थान का जैन साहित्य		30-00
3. प्राकृत स्वयं शिक्षक	लेखक—डॉ० प्रेम सुमन जैन	15-00
4. आगम तीर्थ	अनु० डॉ० हरिराम आचार्य	10-00
5 स्मरण कला	अनु० मोहन मुनि शार्दूल	15-00
6 जैनागम दिग्दर्शन	(45 जैनागमों का सजिल्द संक्षिप्त परिचय) सामान्य लें० डॉ मुनि नगराजजी	20-00 16-00
7. जैन कहानियाँ	ले० उपाध्याय महेन्द्र मुनि	4-00
8 जाति स्मरण ज्ञान	ले० उपाध्याय महेन्द्र मुनि	3-00
9. हाफ ए टेल (अर्धकथानक)	(कवि बनारसीदास रचित स्वात्म-अर्धकथानक का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद) सम्पादक एवं अनुवादक : डॉ० मुकुन्द लाठ	150-00
10. गणधरवाद	ले० दलसुखभाई मालवणिया अनु० प्रो० पृथ्वीराज जैन सम्पादक—महोपाध्याय विनयसागर	50-00
11. जैन इन्सक्रिप्सन्स आफ राजस्थान	ले० रामवल्लभ सोमानी	70-00
12 एन्शियंट सायंस फ्रोम जैन सार्सेज पार्ट I. बेसिक मेथेमेटिक्स	ले० प्रो० लक्ष्मीचन्द जैन	15-00

13. प्राकृत काव्य मञ्जरी — ले० डा० प्रेम सुमन जैन
14. महावीर का जीवन सन्देश : युग के सन्दर्भ में — आचार्य काका कालेलकर
15. जैन पोलिटिकल थोट — डॉ० जी० सी० पाण्डे
16. स्टडीज् आफ जैनिज्म — डॉ० टी० जी० कलघटगी
17. जैन, बौद्ध और गीता का साधना मार्ग — डॉ० सागरमल जैन
18. जैन, बौद्ध और गीता का समाज दर्शन — डॉ० सागरमल जैन
19. जैन, बौद्ध और गीता का कर्म सिद्धान्त — डॉ० सागरमल जैन
20-21. जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग 1-2 — डॉ० सागरमल जैन
22. हेम प्राकृत व्याकरण शिक्षक — डॉ० उदयचन्द्र जैन
23. आचारांग चयनिका — डॉ० के० सी० सोगाणी

---

1. एक हजार रुपये से अधिक प्रकाशन खरीदने पर 40% कमीशन संस्थान के प्रकाशनों का पूरा सेट खरीदने पर 30% कमीशन जाता है।
2. डाक-व्यय एवं पैकिंग व्यय पृथक् से होगा।

प्राप्ति स्थान :

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान
3826 यति श्यामलालजी का उपासरा,
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर-3
पिन कोड नम्बर-302 003